अध्याय – 7
व्यावहारिक भू–विज्ञान
(Applied Geology)

कक्षा 11वीं की तरह कक्षा 12वीं में भी व्यावहारिक भू–विज्ञान को भू–जल विज्ञान, भू–अभियांत्रिकी, सुदूर संवेदन व पर्यावरण भू–विज्ञान के अन्तर्गत अध्ययन किया जाएगा।

भू–जल विज्ञान (Hydrogeology)

जलभृत एवं इसके प्रकार (Aquifer and its Types)

जलभृत एक भूगर्भीय संरचना है जिसमें भू–जल का परिवहन व संचयन होता है। जलभृत से भू–जल का संचारण होता है। इसमें वर्षा के अनुसार मात्रा व गति में परिवर्तन आता है। जलभृत को निम्न प्रकारों में वर्गीकृत किया गया है –

(क) **अदाबीकृत जलभृत** (Unconfined aquifer) : अदाबीकृत जलभृत में भू–जल भरने की (Charging) व खाली होने की (Discharging) की गति लगातार बनी रहती है (चित्र 7.1)। यह इस बात पर निर्भर करता है कि भरने व खाली होने का क्षेत्रफल किस गति से बदल रहा है। इस कारण ये भू–जल स्तर लहरदार (Undulating) आकार में पाया जाता है (चित्र 7.2)।

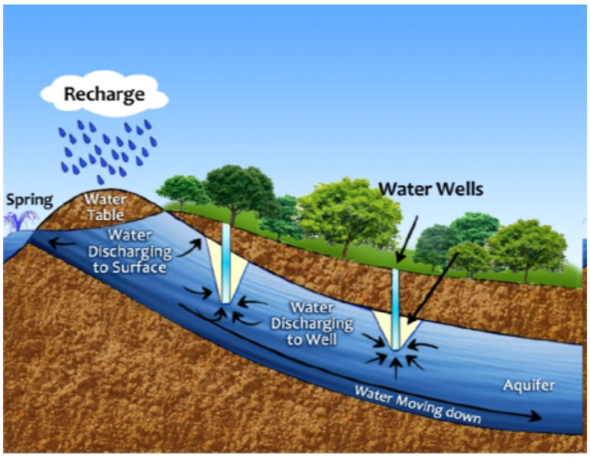

चित्र 7.1 : भू–जल के खाली होने (Discharge) **व भरने का** (Charging) **का चित्रण**

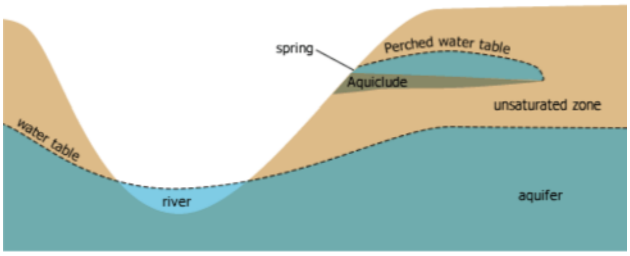

चित्र 7.2 : पर्चड जलभृत व लहरदार भू–जल स्तर को दर्शाता चित्र

अदाबीकृत जलभृत की एक विशेष परिस्थिति को पर्चड (Perched) जलभृत कहा जाता है जिसमें मुख्य भू–जल स्तर से भिन्न एक भू–जल स्तर पाया जाता है (चित्र 7.2)। इसमें नीचे की ओर अप्रवेश्य चट्टानों की परत होती है। पर्चड भू–जल क्षेत्र कई बार झरने के रूप में भी भू–आकृतियों पर दिखाई देता है।

(ख) **दाबीकृत जलभृत** (Confined aquifer) : दाबीकृत जलभृत उस परिस्थिति में बनते हैं जहां पर जलभृत में भू–जल वायुमण्डलीय दाब से अधिक दाब में पाया जाता है। भू–जल दाबीकृत जलभृत में तब प्रवेश करता है जब दाबीकृत परत सतह तक उठ जाती है। अगर दाबीकृत संस्तर भूमिगत रहता है तब जलभृत अदाबीकृत कहलाता है। दाबीकृत जलभृत के ऊपर एक काल्पनिक सतह होती है जिसे प्रवणता सतह (Piezometric surface) कहते है जो कि भू–जल के हाइड्रोस्टेटिक दाब स्तर को दर्शाती है। अगर प्रवेश्य परत के ऊपर और नीचे दोनों ओर अप्रवेश्य परत इस प्रकार से ढाल में हो कि भू–जल लगातार बहता रहे, उसे आरटिशियन (Artesian) की परिस्थिति कहते है (चित्र 7.3)। आरटिशियन परिस्थिति में जल कुआं प्रवेश्य परत में खोदा जाए तो उसे आरटिशियन कुआं कहते हैं। आरटिशियन कुएं को बहता कुआं (Flowing well) भी कहते है।

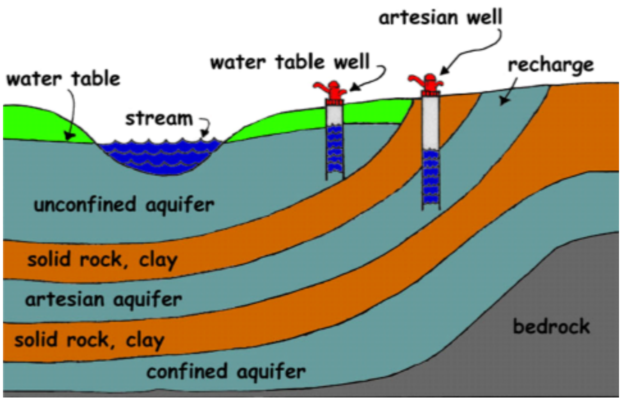

चित्र 7.3 : दाबीकृत, अदाबीकृत, अर्द्धदाबीकृत व आरटीशियन कुएं की परिस्थितियों को समग्रता के साथ दर्शाया गया है।

(ग) **अर्द्धदाबीकृत जलभृत** (Semiconfined aquifer) : यह जलभृत प्रकृति में सर्वाधिक पाये जाते हैं। इस प्रकार के जलभृत प्रायः जलोढ़ घाटियों, समतल क्षेत्र, झील या द्रोणी में देखे जाते हैं। इस जलभृत में प्रवेश्य परत के ऊपर या नीचे एक अप्रवेश्य परत मिलती है। यह परत एक से ज्यादा प्रकार की चट्टानों की बनी होती है जो या तो प्रवेश्य या फिर अप्रवेश्य श्रेणी की होती है।

प्रकृति में उपर्युक्त परिस्थिति सघनता से मिलती है परन्तु गणितीय गणना हेतु ऐसा माना जाता है कि जलभृत में मिलने वाली चट्टानें एक ही संगठन व संरचना युक्त है। ऐसी परिस्थिति को आदर्श जलभृत कहते हैं। ऐसे आदर्श जलभृत में समस्त स्थानों पर एक जैसे भूजलीय गुण होते हैं जो प्रायः प्राकृतिक रूप में नहीं पाये जाते हैं। आदर्श जलभृत को आइसोट्रोपिक जलभृत (Isotropic acquifer) भी कहा जाता है। आदर्श जलभृत और लीकी जलभृत (Leaky acquifer) में अन्तर को जानने के लिए रिसाव कारक (Leakage factor) का मान निकाला जाता है। यह जल निकासी (Drainage) के बदलाव (Deviation) और कोन ऑफ डिप्रेशन (Cone of depression) या विच्छेदित भू–जल (Disconneted water) के कम होने पर निर्भर करता है।

भू–जल का उर्ध्व वितरण
(Vertical Distribution of Groundwater)

भू–जल के उर्ध्व वितरण की प्रारंभिक जानकारी हम कक्षा 11वीं में ले चुके हैं। निम्न चित्र 7.4 में उसे विस्तार से समझाया गया है।

उपर्युक्त चित्र के अनुसार भू–जल को आंतरिक जल क्षेत्र (Internal water) या शैलीय भू–जल (Bedrock water) और अंतःजुड़ाव भू–जल क्षेत्रों में बांटा गया है। आंतरिक भू–जल क्षेत्र का अर्थ है रसायनिक रूप से संगठित जल, मेगमा में घुला हुआ

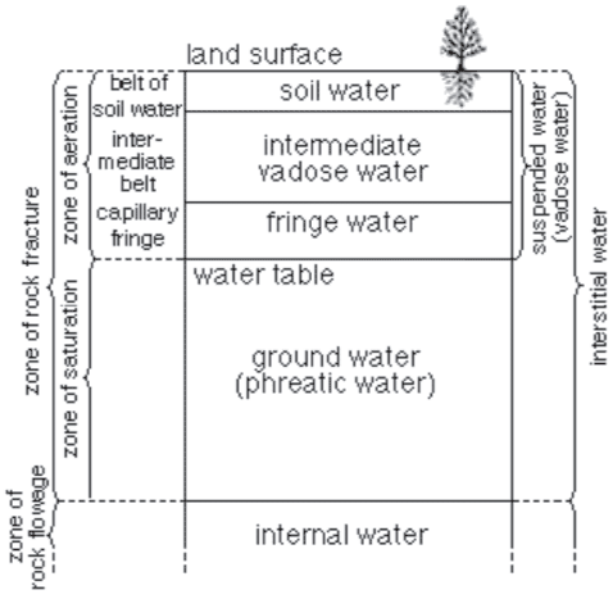

चित्र 7.4 : भू–जल का उर्ध्व वितरण

भू–जल या चट्टान में कणों के मध्य के खाली स्थानों का आपस में जुड़ा हुआ (Interconnected) जल, जो कि ऐरेशन क्षेत्र और संतृप्त क्षेत्र में बांटा गया है। ऐरेशन क्षेत्र तीन भागों में विभाजित है – पेलिकूलर क्षेत्र, वाडोस क्षेत्र और केपेलेरी क्षेत्र। इसी तरह संतृप्ति क्षेत्र भी तीन भागों में विभाजित है – सहजात (Connate) क्षेत्र, स्थिर क्षेत्र और दाबीकृत क्षेत्र जिनकी प्राथमिक जानकारी कक्षा 11वीं में ली जा चुकी है।

संतृप्ति क्षेत्र में समस्त खाली स्थान जब जल के कणों से परिपूर्ण हो जाते हैं, तो हाइड्रोस्टेटिक दाब का निर्माण होता है। यह संतृप्त क्षेत्र की ऊपरी परत से लेकर नीचे अप्रवेश्य परत की गहराई तक नापा जाता है। अगर संतृप्ति क्षेत्र में ऊपरी अप्रवेश्य परत हट जाए तो भू–जल स्तर की ऊपरी परत ही संतृप्ति क्षेत्र की सीमा को दर्शाती है जिसे फ्रिऐटिक (Phreatic) भू–जल स्तर भी कहते हैं।

संतृप्ति क्षेत्र में जितना भी भू–जल एकत्र होता है उसका उपयोग उस क्षेत्र की वनस्पति के लिए हो सकता है जिसे उपलब्ध भू–जल (Available water) कहा जाता है। इसकी अधिकतम सीमा को क्षेत्र क्षमता (Field capacity) कहा जाता है और न्यूनतम सीमा को ''शिथिलन बिन्दु'' (Wilting point) कहते है। सामान्य शब्दों में अधिकतम जलग्रहण क्षमता को ''क्षेत्र–क्षमता'' और वनस्पति मुरझाने के बिन्दु को ''शिथिलन बिन्दु'' कहा जाता है।

केपेलेरी जोन, ऐरेशन जोन की निचली परत है और संतृप्ति क्षेत्र से सम्पर्क में है। इसमें केपेलेरी जल और हाइग्रोस्कोपिक जल पाये जाते है। दोनों में कोई विशेष फर्क नहीं है। केपेलेरी जल मोटे दानों वाले जलभृत का हिस्सा है जहां पर पानी के कण

बड़े आकार के दानों के मध्य पतली आकार की केपेलेरी ट्यूब में पाये जाते है। जबकि हाइग्रोस्कोपिक जल कणों पर पतली परत के रूप में पाये जाते है। इस आधार पर गणक ज्ञात किया जाता है जो किसी भी सुखी मृदा के अंदर 25°C तापमान व 50% आर्द्रता पर जल को सोखने की क्षमता होती है। हाइग्रोस्कोपिक जल और क्षेत्र–क्षमता के मध्य के क्षेत्र को उपलब्ध जल कहा गया है।

भू–जल अन्वेषण की विधियां

भू–जल अन्वेषण की विधियों को सतही अन्वेषण व उपसतही अन्वेषण में विभाजित किया जा सकता है।

(क) **सतही अन्वेषण** (Surface investigation) : पृथ्वी की बाहरी सतह पर किये जाने वाले अन्वेषण को सतही अन्वेषण कहा जाता है। सतही अन्वेषण की विधियां निम्न प्रकार से है :–

(i) **भू–भौतिकी अन्वेषण :** भू–भौतिकी अन्वेषण के द्वारा पृथ्वी के अंदर की चट्टानों की परतों के भौतिक स्वरूप का अध्ययन किया जाता है। भूजल अन्वेषण में चट्टानों का प्रकार, संरचना, छिद्रों की मात्रा, आकार व आपस में जुड़ाव को जांचा जाता है।

भू–भौतिकी अन्वेषण में चट्टानों की सतह पर विद्युत धारा को चलायमान किया जाता है। इस प्रक्रिया में प्रतिरोधकता को अलग–अलग दूरी पर नापा जाता है। विद्युत विभव पैदा किया जाता है जिससे चट्टानों की प्रतिरोधकता को चट्टान के घनत्व, संगठन, छिद्रता के आधार पर ज्ञात किया जाता है। इलेक्ट्रोड को सतह पर अलग–अलग दूरी पर स्थापित किया जाता है और हर स्थान पर विभव को नापा जाता है। इलेक्ट्रोड को स्थापित करने के लिए शल्मबरगर विधि अपनाई जाती है।

भूकम्पीय अपवर्तन की विधि से चट्टानों में शॉक (Shock) तरंगें झटकों द्वारा भेजी जाती है जिनको अलग–अलग दूरी पर निश्चित स्थानों पर नापा जाता है। भूकम्पीय तरंगों की गति में परिवर्तन, चट्टानों के प्रकार व संगठन पर निर्भर करता है। भूकम्पीय तरंगों की गति में परिवर्तन चट्टानों की प्रत्यास्थता (Elasticity) पर भी निर्भर करता है। तरंग गति छिद्रों की संख्या के बढ़ने के साथ कम हो जाती है परन्तु अगर छिद्रों में पानी भरा हुआ हो तो तरंग गति बढ़ जाती है।

गुरुत्वाकर्षण व चुम्बकीय विधियों में भी सतही संरचनाओं में पानी की मात्रा व गहराई का पता लगाया जा सकता है। गुरुत्व (Gravity) से जलोढ़ निक्षेपों की गहराई की सीमा ज्ञात की जा सकती है और इसी प्रकार से अन्तर्वेधी (Intrusive) चट्टान की जानकारी भी प्राप्त की जा सकती है। चुम्बकीय तरीकों से विशेष रूप से लोह युक्त चट्टानों की संरचना ज्ञात की जा सकती है। उदाहरण के लिए बेसाल्टिक चट्टानों में पानी की गहराई ज्ञात करने में इस विधि का उपयोग किया जा सकता है।

(ii) **भू–वैज्ञानिक विधि :** भू–विज्ञान की मूलभूत जानकारी किसी भी क्षेत्र के भू–जल के आंकलन में सहायक होती है। चट्टानों के प्रकार, संरचना व गहराई तथा दूरी के साथ बदलाव का आंकलन भू–जल के स्तर में परिवर्तन का सूचक होता है। अवसादी चट्टानों में विशेष रूप से निक्षेपण और शीलायन की प्रक्रिया की जानकारी भू–जल के क्षेत्रों का पता लगाने में सहायक होती है। संस्तरों की मोटाई व आंतरिक संरचना पानी ग्रहण करने की क्षमता को ज्ञात करने में सहायक होती है। भू–जल की गुणवत्ता का अंदाजा भी चट्टानों के प्रकार से ज्ञात किया जा सकता है।

(iii) **एरियल फोटोग्राफ :** भू–जल संग्रह करने वाली चट्टानों की तलरूप (Topography) अलग सतही संरचना युक्त होती है इसलिए एरियल फोटोग्राफ की सहायता से ऐसी संरचनाओं का पता लगाया जा सकता है। तलरूपों के ऊपर वनस्पति, वन, जल निकासी रंग आदि कारकों के माध्यम से भू–जल की उपलब्धता का अंदाजा लगाया जा सकता है। अलग–अलग संरचना के फोटोग्राफों को एक साथ जमाकर मोज़ेक (Mosaic) बनाया जाता है और भू–जल मानचित्र का निर्माण किया जाता है।

(ख) **उपसतही अन्वेषण** (Subsurface investigation) : उपसतही अन्वेषण की विधियां निम्न प्रकार से है :–

(i) **छिद्रण परीक्षण** (Test drilling) **:** भू–जल की गहराई जानने के लिए कम व्यास के छिद्र जमीन के अन्दर कुछ गहराई तक किये जाते हैं, जिसे छिद्रण परीक्षण कहा जाता है। यह छिद्रण प्रक्रिया भू–जल की आंतरिक परिस्थितियों को जानने में सहायक सिद्ध होती है। इसमें गहराई पर पानी की उपस्थिति के साथ–साथ चट्टानों के प्रकार की गहराईयां और उनमें जल ग्रहण करने व प्रवाहित करने की क्षमताओं का भी आंकलन किया जाता है। जेटिंग (Jetting) भी एक प्रकार की ड्रीलिंग होती है जिसमें छोटे व्यास के छिद्र कम खर्चे में किये जाते हैं।

(ii) **प्रतिरोधकता–लॉगिंग** (Resistivity logging) **:** पूर्व में खुदे हुए कुएं के अन्दर दिवारों के सहारे गहराई में आसपास की चट्टानों की प्रतिरोधकता नापने के लिए इलेक्ट्रोड्स को कुएं के अन्दर उतारा जाता है। सामान्यतः चार इलेक्ट्रोड्स को भीतर उतारा जाता है, जिनमें दो करंट को पैदा करने के लिए और दो विभव को नापने के लिए होती है। इसे विद्युत कुआं लॉगिंग (Electric well logging) भी कहते है। बिना केसिंग (Casing) वाले कुएं की प्रतिरोधकता को दिवारों की गहराई के आधार पर नापा जाता है।

(iii) **विभव लॉगिंग** (Potential logging) **:** इस विधि में पृथ्वी के अंदर स्थित शैलों के विद्युत विभव को नापा जाता है। इसे तात्कालिक विभव लॉगिंग (Spontaneous potential logging)

भी कहते है। इनकी इकाई मिलीवॉल्ट होती है। एक इलेक्ट्रोड को कुएं के अन्दर और दूसरी इलेक्ट्रोड को सतह पर रखा जाता है। नापने का यह कार्य बहुत ही ध्यान से विशेषज्ञ द्वारा किया जाता है क्योंकि इसमें पृथ्वी के अन्दर पायी जाने वाली भिन्न–भिन्न प्रकार की असमानताओं का मिश्रित प्रभाव दिख सकता है। पानी की अशुद्धताएं भी इसको प्रभावित करती हैं।

(iv) **तापमान लॉगिंग** (Temperature logging) : भू–जल के तापमान को प्रतिरोधकता तापमापक द्वारा ज्ञात किया जा सकता है। इससे पानी की गुणवत्ता का पता चलता है। ऐसा माना जाता है कि प्रति सौ फीट की गहराई के साथ तापमान में 1°C की बढ़ोतरी होती है। तापमान में बदलाव जलभृत के स्रोत में बदलाव को दर्शाता है। तापमान में बढ़ोतरी भू–जल में आयनिक परागमता (Ionic mobility) को बढ़ा देती है जिसकी वजह से श्यनता (Viscosity) कम हो जाती है।

(v) **केलिपर लॉगिंग** (Caliper logging) : पानी के कुओं में व्यास नापने के लिए हॉल केलिपर (Hole caliper) का प्रयोग किया जाता है। इस विधि को केलिपर लॉगिंग कहते हैं। इसमें मापक के चार हाथ (Arms) होते हैं। एक विद्युतीय प्रतिरोधक होता है जो हाथों के हिलने से संचालित होता है। कुएं के अन्दर उपकरण को उतारा जाता है और गहराई में जाकर इसके हाथों को झटके के साथ खोला जाता है तथा कुएं के व्यास को नापा जाता है।

भू–जल प्रदूषण

(क) **कारण** : भूमिगत जल प्रदूषण के कारणों को निम्न प्रकारों में विभाजित किया गया है :–

(i) **रोगजनक** (Pathogenic) **कारक** : इन कारकों का जन्म मुख्य रूप से मानव व जानवर जनित अपशिष्ट से होता है जिसके कारण से भू–जल में कई प्रकार के कीटाणु जैसे कि बेक्टीरिया, वायरस आदि पैदा होते है। सबसे अधिक कोलीफॉर्म बेक्टीरिया भू–जल को प्रदूषित करता है।

(ii) **अकार्बनिक रसायनिक पदार्थ** : कई प्रकार के अकार्बनिक पदार्थ जैसे कि सीसा (Pb), पारा (Hg), क्रोमियम (Cr), फास्फेट (PO_4), नाइट्रेट (NO_3) आदि भू–जल में प्रदूषण का कारण बनते हैं जो कि मनुष्यजनित कृषि गतिविधियों से पैदा होते है और भू–जल को प्रदूषित करते हैं। इस प्रकार के तत्व कभी–कभी मातृशैल (Host rock) में से निकलकर भू–जल में घुलनशील पदार्थ बन जाते हैं, जिससे सम्पूर्ण पारिस्थितिकी तंत्र को हानि पहुंचती है।

(iii) **कार्बनिक रसायनिक पदार्थ** : उद्योगों, दवाइयों की फैक्ट्री व अन्य खाना बनाने के संयंत्रों से निकलने वाले कार्बनिक पदार्थ भी भू–जल को प्रदूषित करते हैं। इन प्रदूषणकारी पदार्थों में कम अणुभार वाले हाइड्रोकार्बन पदार्थ मिलते हैं। ऐसे पदार्थों का उत्सर्जन पेस्टीसाइड्स और अन्य प्रकार के उर्वरकों से भी होता है।

(iv) **रेडियोधर्मी पदार्थ** : कई प्रकार से रेडियोधर्मी पदार्थ जैसे कि ^{14}C, ^{3}H, ^{90}Sr, ^{131}I, ^{137}CS, ^{222}Rn, ^{235}U, ^{85}Kr आदि भिन्न प्रकार से प्राकृतिक स्रोतों से भू–जल को प्रदूषित करते हैं। रेडियोधर्मी पदार्थ में अर्द्धचक्र पूर्ण होने पर यह क्षय होकर भू–जल में प्रदूषण का कारण बनते हैं क्योंकि भू–जल इनके लिए उचित माध्यम का कार्य करता है।

(v) **पर्टिकुलेट पदार्थ** (Particulate matter) : कई प्रकार के छोटे आकार के कण जैसे मृदा कण (Clay fibre) आदि भू–जल में घुलकर प्रदूषण का कारण बनते हैं। इनका स्रोत या तो प्राकृतिक होता है या कोई भी खदान क्षेत्र होता है जहां इनका खनन किया जाता है। वहां से यह पानी में मिलकर भू–जल की गुणवत्ता को गिरा देते हैं।

उपर्युक्त समस्त भू–जल प्रदूषण के कारकों के स्रोतों को निम्न प्रकार से बिन्दुवार किया जा सकता है :–

(i) घरेलू कचरा, सेप्टिक टैंक, सेसपूल (Cesspool)।
(ii) सामुदायिक कचरा निवारण केन्द्र पर खुले कचरे के ढेर।
(iii) सिवरेज लाइन में बहाव व लिकेज।
(iv) पशु आहार का कचरा मृदा में मिलकर।
(v) अस्पतालों से निकलने वाला अपशिष्ट।
(vi) उद्योगों से जनित कचरा।
(vii) खनन क्षेत्रों से जनित प्रदूषण कारक।
(viii) समुद्र में होने वाला ऑयल रिसाव।

(ख) **निवारण** : भू–जल प्रदूषण के निवारण हेतु निम्न सुझाव सम्मिलित किये जा सकते हैं :–

(i) **प्रदूषण कारक पर उत्सर्जन के स्थान पर नियंत्रण** : लैण्ड–फिल (Land fills), खड्डे (Pits) आदि भू–जल प्रदूषण के मुख्य कारक हैं और इन स्थानों का उचित उपचार कर भू–जल प्रदूषण को स्रोत पर ही नियंत्रित किया जा सकता है। डिस्पोजल पिट (Disposal pit) को उचित ढंग से ढका जाना चाहिए जिससे कि हवा के माध्यम से बारिश का पानी उसमें मिल न सके। लैण्ड–फिल (Land fills), खड्डे (Pits) को अलग–अलग हिस्सों में विभाजित किया जा सकता है जिससे कि अलग–अलग उपचार किया जा सके। डिस्पोजल पिट के अन्दर सूक्ष्मजीवों को सड़ाने के लिए छोड़ा जा सकता है ताकि कचरे से खाद बन जाए और उसका उपयोग हो सके तथा भू–जल में सम्मिलित होने पर भी प्रदूषण नहीं करे।

स्रोत के स्थान पर भू–जल कचरे में मिलता है तो निक्षालितक (Leachate) का निर्माण होता है जो गुरुत्वाकर्षण द्वारा नीचे की ओर परागमन करता है। इस निक्षालितक को नीचे की तरफ जाने से रोक कर भू–जल को प्रदूषित होने से बचाया जा सकता है। इसके लिए भराव के स्थान पर निक्षालितक को अलग करने की व्यवस्था का निर्माण होना चाहिए। पिट (Pit) की बनावट करते समय इसकी क्षमता का पूर्वानुमान लगाकर निर्माण करना चाहिए जिससे कि निक्षालितक भू–जल में नहीं मिल पाए।

(ii) प्रदूषित भू–जल के पुनः शुद्धिकरण हेतु उचित संयंत्रों का निर्माण कार्य भी आवश्यक है। भू–जल में मिलने वाले प्रदूषण कारक की मात्रा का निर्धारण करके शुद्धिकरण संयंत्र की सीमा तय की जानी चाहिए। उद्योगों से निकलने वाले अपशिष्ट का रसायनिक अध्ययन कर उससे निपटने के लिए उचित रसायनों का प्रयोग कर प्रदूषण के प्रभाव को कम किया जा सकता है। आर्गेनिक प्रदूषण कारक जैसे कि हानिकारक बेक्टीरिया आदि क्लोरीनेशन द्वारा समाप्त किये जा सकते हैं। मृदा के साथ मिलकर भू–जल को प्रदूषित करने वाले कारकों को उचित मात्रा में उपयोग में लाकर या आर्गेनिक खाद का उपयोग कर प्रदूषण को घटाया जा सकता है।

(iii) कानून में नियम तथा धाराओं को विस्तृत रूप से प्रदूषण के कारकों के अनुसार बनाकर उचित माध्यमों द्वारा जनजागृति द्वारा अमल में लाया जा सकता है। भू–जल प्रदूषण से प्रभावित क्षेत्रों के लोगों को उचित मुआवजा देना भी एक उपाय हो सकता है। प्रदूषण रहित भू–जल की उपलब्धता प्रदान करना हर निकाय/निगम और पंचायत स्तर पर आवश्यक रूप से हो और इसकी लगातार समयबद्ध जांच के लिए एक निष्पक्ष एजेन्सी को नियुक्त किया जा सकता है।

(iv) प्राकृतिक रूप से विकसित जलनिकासी व्यवस्था (Drainage system) में आने वाले प्रदूषण कारकों को वैज्ञानिक तरीकों से हटाया या दिशा परिवर्तित किया जा सकता है जिससे कि झीलों, तालाबों, बांधों, एनिकट आदि में भू–जल प्रदूषित न हो।

(v) प्रदूषण कारक जैसे कि रेडियोधर्मी अप्रयुक्त पदार्थ को उचित माध्यम में संरक्षित रखा जाए जिससे की वह बाहरी वातावरण में शामिल न हो पाए। इसी प्रकार से तेल के कुओं में से तेल निकालते समय ड्रिलिंग रिग (Drilling rig) पर लीकेज को निरन्तर रूप से नियंत्रित कर समुद्री जल में तेलीय पदार्थ के फैलाव को कम किया जा सकता है। समुद्र के तल में खनन करते समय खनन क्षेत्रों में तकनीक के उचित इस्तेमाल द्वारा प्रदूषण को कम किया जा सकता है। प्रदूषण कारकों को लम्बे समय तक के लिए एकाकी करने की तकनीक का विकास किया जाना चाहिए। भू–जल प्रदूषण निवारण के कार्यों में सबसे महत्वपूर्ण भू–जल के परागमन के मार्ग की ट्रेकिंग की तकनीक को विकसित करना है जिससे कि प्रदूषण के प्रभाव व फैलाव को कम किया जा सके।

राजस्थान में भू–जल
(Groundwater in Rajasthan)

(क) वितरण

राजस्थान प्रमुख रूप से मरू प्रदेश की श्रेणी में आता है परन्तु वहां के पूर्वी व दक्षिणी भाग में भू–जल वितरण मरूस्थल की श्रेणी में नहीं आते। पश्चिमी भागों में भू–जल अधिक गहराई में पाया जाता है तथा पूर्वी भागों में भू–जल कम गहराई में मिलता है। यहाँ स्थिति काफी विकट है। यहाँ पर भू–जल खारा पाया जाता है।

राजस्थान में भू–जल का विवरण

1.	कुल क्षेत्रफल	–	3,42,239 कि.मी.
2.	वार्षिक वर्षा (औसत)	–	504 मि.मी.
3.	कुल ब्लॉक	–	236
4.	अति व जल दोहन ब्लॉक	–	140
5.	क्रिटिकल ब्लॉक	–	50
6.	सेमीक्रिटिकल ब्लॉक	–	14
7.	वार्षिक भू–जल स्रोत	–	11.56 BCM
8.	वार्षिक भू–जल उपलब्धता	–	10.38 BCM
9.	वार्षिक भू–जल	–	12 PP BCM
10.	भूजल विकास	–	125%

भू–जल के क्षेत्रों को तीन भागों में बांटा गया है – सफेद क्षेत्र (White zone) ~ 66%, ग्रे–क्षेत्र (Grey zone) ~ 7.1%, डार्क क्षेत्र (Dark zone) ~ 27%। लगभग 500 MCM भू–जल का उपयोग पीने के पानी में किया जाता है। कुल भू–जल क्षमता युक्त क्षेत्र लगभग 2,13,000 वर्ग कि.मी. है। इनमें से लगभग 42% जलोढ़ जलभृत है, 23% अवसादी जलभृत व 35% क्रिस्टेलाइन जलभृत है।

भू–जल की उपलब्धता के आधार पर राजस्थान को 4 जोन में बांटा गया है।

प्रथम जोन (Zone-I) थार के शुष्क क्षेत्र : मुख्य रूप से जलोढ़, अर्द्ध–दृढ़ीकृत भूक्षेत्र जहां पर भूजल गहरा, अर्द्ध–दृढ़ीकृत रूप में पाया जाता है। इनमें भू–जल उपलब्धता मध्यम है। कुछ क्षेत्रों में अधिक गहराई पर पेलियोचैनल (Paleochannel) में से मीठे पानी की उपलब्धता मिलती है। नहरी क्षेत्र में पानी के कारण भू–जल स्तर कई स्थानों पर काफी ऊपर आ गया है। उदाहरण के लिए गंगानगर, जैसलमेर, बाड़मेर, बीकानेर।

द्वितीय जोन (Zone-II) : शुष्क से अर्द्ध शुष्क क्षेत्र जो कि जलोढ़ से निर्मित है और दृढ़ीकृत अवसादी तथा आग्नेय चट्टानों

का क्षेत्र है। भू–जल स्तर गहरा है, तथा जलभृत अर्द्ध–दृढ़ीकृत है तथा भू–जल की उपलब्धता मध्यम से अधिक है। उदाहरण के लिए चुरू, सीकर, झुंझुनू, नागौर, पाली, जालोर, जोधपुर।

तृतीय जोन (Zone-III) : अरावली पहाड़ी क्षेत्र : पूर्ण रूप से कायांत्रित व अवसादी चट्टानों का क्षेत्र जहां पर भू–जल कम से मध्यम गहराई में उपलब्ध है। उपलब्धता कम होती है क्योंकि ज्यादातर ढालयुक्त क्षेत्र है जिसकी वजह से पानी का ठहराव कम हो पाता है। उदाहरण के लिए अलवर, जयपुर, अजमेर, टोंक, उदयपुर, भीलवाड़ा, चित्तौड़, डूंगरपुर, बांसवाड़ा, सिरोही।

चतुर्थ जोन (Zone-IV) : पूर्वी पठारी क्षेत्र जहां पर जलभृत अवसादी चट्टानों में है जो कि विंध्यन महाकल्प और दक्खन के बेसाल्ट के बने है। भू–जल स्तर कम गहराई पर मिलता है तथा अदाबीकृत जलभृत अवसादी और आग्नेय चट्टानों में मिलते है। उदाहरण के लिए भरतपुर, धौलपुर, सवाई माधोपुर, करौली, कोटा, बारां, झालावाड़ व बूंदी।

(ख) उपयोग

(i) घरेलू कार्य : भू–जल का उपयोग पीने के पानी में ट्यूबवेल, बोरिंग व कुओं के द्वारा काम में लिया जाता है। खाना बनाने के कार्य, घर की साफ–सफाई, रोजमर्रा के कार्य, जानवरों के रख–रखाव व अन्य कार्य में भू–जल का उपयोग सर्वाधिक होता है।

(ii) खेती के कार्य में वर्षभर भू–जल ही प्रमुख स्रोत है क्योंकि राजस्थान का बड़ा हिस्सा शुष्क प्रदेश की श्रेणी में आता है। राजस्थान में भू–जल संग्रहण के लिए कुछ बड़े बांध क्षेत्र है। नहरों की सहायता से इनका जल दूरस्थ स्थानों तक पहुंचाया जाता है।

(iii) भू–जल का उपयोग उद्योगों विशेष रूप से मार्बल परिष्कृत इकाइयों में होता है। इसका उपयोग वस्त्र निर्माण इकाइयों, ऊर्जा उत्पादन इकाइयों आदि में भी व्यापक रूप से देखा जाता है।

(iv) पानी से बिजली पैदा करने का कार्य भी बड़े बांधों पर किया जाता है।

(ग) प्रबंधन

राजस्थान में जल प्रबंधन हेतु राजस्थान सरकार व केन्द्र सरकार के मंत्रालय के विभिन्न विभाग कार्यरत हैं। केन्द्र सरकार का जल स्रोत मंत्रालय (Ministry of Water Resources) व केन्द्रीय भूजल विभाग कार्यरत है। राजस्थान सरकार में भी जल स्रोत मंत्रालय और राज्य भू–जल विभाग कार्यरत है। इन विभागों के कार्यों की जानकारी http.gwd.rajasthan.gov.in वेबसाइट से प्राप्त की जा सकती है। राजस्थान में भू–जल का प्रबंधन राज्य जल नीति के माध्यम से सरकार द्वारा नीतिगत फैसले लेकर किया जाता है। इस नीति का निर्माण राज्य जल संसाधन आयोजन विभाग, राजस्थान सरकार, जयपुर द्वारा किया गया है।

राज्य में भू–जल प्रबंधन हेतु एकीकृत जल संसाधन प्रबंधन का गठन किया गया है जो जल उपयोग, प्रबंधन, जनभागीदारी, सामुदायिक स्तर पर तकनीकी प्रोत्साहन व सूचना प्रबंधन तंत्र (MIS) का कार्य देखता है। राज्य जल नीति के अनुसार जल संसाधन के मूल ढांचे में भू–जल का आधारभूत ढांचा, संरक्षण, गुणवत्ता व पर्यावरणीय पहलुओं का आंकलन किया जाता है।

राजस्थान में राज्य स्तरीय भू–जल विभाग प्रत्येक जिले में कार्यरत है और इसका केन्द्रीय कार्यालय जयपुर में है। यह विभाग प्रत्येक वर्ष में मानसून पूर्व व मानसून पश्चात् भू–जल स्तर मापने का कार्य करता है। राजस्थान में भू–जल स्रोतों के प्रबंधन को बेहतर बनाने के लिए जलभृत के मानचित्रण का कार्य भी किया जा रहा है। केन्द्रीय भू–जल विभाग ने राजस्थान के प्रत्येक जिले का भू–जल एटलस बनाया है जो कि जिलेवार व ब्लॉकवार भू–जल की वार्षिक स्थिति में परिवर्तन को दर्शाता है। राज्य में कुल बारह ब्लॉक का चयन विशेष रूप से भू–जल विभाग द्वारा किया गया है, जिनके चयन में भू–जल की उपलब्धता व गुणवत्ता मुख्य कारक रहे हैं – झोटवाड़ा (जयपुर), पुष्कर घाटी (अजमेर), जालोर, रानीवाड़ा, भीनमाल (जालोर), बुधाना, चिड़ावा, सूरजगढ़ (झुंझुनू), मुंडवा (नागौर), बहरोड़ (अलवर), टोड़, श्रीमाधोपुर (सीकर)।

राजस्थान सरकार ने वर्तमान में भू–जल की गंभीर स्थिति को भांपते हुए विशेष रूप से पूरे राजस्थान में ''मुख्यमंत्री जल स्वावलम्बन अभियान'' की शुरूआत की है जिससे कि भू–जल उपलब्धता तथा गुणवत्ता में बढ़ोतरी के लिए दीर्घकालीन परिणाम को सुनिश्चित करने का प्रयास किया जा रहा है। राजस्थान के कुछ क्षेत्रों में भू–जल संरक्षण व प्रबंधन के विशेष प्रयासों के तहत “MY WELL” मोबाईल 'एप' का निर्माण भी किया गया है।

भू–अभियांत्रिकी (Geo-Engineering)

बांध (Dam), सुरंग (Tunnel), पुल (Bridge) एवं सड़क (Road) निर्माण में भू–विज्ञान की भूमिका

बांध, सुरंग, पुल एवं सड़क निर्माण में भू–विज्ञान की अहम् भूमिका है। भू–विज्ञान की जानकारी के आधार पर इन सभी संरचनाओं के निर्माण का कार्य किया जा सकता है। इन समस्त संरचनाओं के निर्माण में तल की अवस्था, निर्माण सामग्री का प्रकार और निर्माण की भौगोलिक परिस्थितियों के निर्धारण व आंकलन करने के लिए भू–विज्ञान की जानकारी महत्वपूर्ण है।

(क) **भौगोलिक परिस्थितियां :** इन परिस्थितियों का निर्धारण व आंकलन भौतिक–भूविज्ञान के आधार पर होता है। भू–आकृति (Geomorphology) का अध्ययन प्रत्येक संरचना के निर्माण की जरूरतों के अनुसार किया जाता है।

(i) किसी भी बांध, सुरंग, पुल एवं सड़क के निर्माण के प्रथम चरण में सर्वप्रथम सबसे ऊपरी परत अर्थात् मृदा की जांच की जाती है जिसे मृदा परीक्षण (Soil-testing) कहा जाता है। सामान्यतः किसी भी स्थान की मृदा का निर्माण उसके नीचे स्थित चट्टान से ही होता है इसलिए मृदा परीक्षण से चट्टान की स्थिति का आंकलन भी किया जा सकता है।

(ii) अभियांत्रिकी संरचनाओं के निर्माण में स्थल की भू–आकृति की जानकारी नवीन तकनीकों द्वारा अलग–अलग मापनी (Scale) पर ली जाती है। नवीन तकनीकों में एरियल फोटोग्राफ, सुदूर संवदेन तकनीक व गूगल इमेजरी का उपयोग किया जाता है। उदाहरण के लिए बांध निर्माण हेतु घाटी के स्थान का विस्तृत चित्रण इन नवीन तकनीकों द्वारा ज्ञात किया जा सकता है। इसी प्रकार से सुरंग निर्माण हेतु पहाड़ों की भू–आकृति, घुमाव, चट्टानों की दिशा, नति व नतिलम्ब की जानकारी सुरंग की दिशा ज्ञात करने में सहायक होती है।

(iii) बांध, सुरंग, पुल व सड़क निर्माण में, निर्माण स्थल पर ढाल को भी निर्माण की आवश्यकता के अनुसार स्थिरीकृत (Stabilize) किया जाता है। यह सुनिश्चित किया जाता है कि निर्माण स्थल का ढाल निर्माण के पश्चात् भी स्थिर रहे तथा बांध, पुल, सड़क या सुरंग की संरचना को किसी भी प्रकार का नुकसान न पहुंचे। समस्त भू–अभियांत्रिकी संरचनाएं भिन्न भौगोलिक परिस्थितियों में अलग–अलग प्रकार से ढाल के नियंत्रण को ध्यान में रखकर निर्मित की जाती है। ढाल को नियंत्रित करने के लिए कंकरीट या लोहे की जाली की परत भी सतह पर बनाई जाती है।

(iv) भौतिक भू–विज्ञान (Physical geology) की जानकारी के आधार पर बर्फीले क्षेत्र, रेगिस्तानी क्षेत्र, नदी–घाटी क्षेत्र, तटीय क्षेत्र व पहाड़ी क्षेत्रों में अभियांत्रिकी निर्माण में अलग–अलग निर्धारकों व मानकों का उपयोग किया जाता है। निर्माण सामग्री का प्रकार व निर्माण तल की अवस्था भी इन्हीं कारकों पर आधारित रहती है। कम तापमान व अधिक तापमान पर चट्टानों का व्यवहार भिन्न होता है इसलिए निर्माण पूर्व इन पहलुओं को भी ध्यान में रखा जाता है। रेगिस्तानी क्षेत्रों में रेत के कण हवा के साथ बहकर निर्मित संरचनाओं को विखंडित कर सकते हैं और इसी प्रकार नदी–घाटी क्षेत्रों में बहता जल भी निर्माण सामग्री को खराब कर सकता है। इसलिए निर्माण सामग्री को रसायनिक व भौतिक रूप से परिष्कृत कर काम में लिया जाता है।

(ख) **तल की अवस्था :** तल की अवस्था के भू–वैज्ञानिक गुणों को जांचने के लिए तीन प्रकार के परीक्षण किये जाते हैं –

(i) **जैक परीक्षण** (Jack test) : यह परीक्षण चट्टान के अन्दर के विरूपण (Deformation) को जांचने के लिए किया जाता है। इसमें एक हाइड्रोलिक जैक (Hydraulic jack) का उपयोग किया जाता है जिससे चट्टानों के एक हिस्से को काटा जाता है। जैक को चट्टानों के अन्दर एक विशेष तरीके से बैठाकर उस पर वज़न डाला जाता है। यह वज़न धीरे–धीरे बढ़ाया जाता है और चट्टान पर पड़ने वाले स्ट्रेन (Strain) को नापा जाता है।

(ii) **अपरूपण परीक्षण** (Shear test) : इस परीक्षण में चट्टानों के छोटे–छोटे खंभे काटकर खड़े किये जाते हैं जिनका आकार तल के पास 1 स्क्वायर मी. होना चाहिए। एक निश्चित ऊंचाई का निर्धारण किया जाता है। ध्यान रखा जाता है कि उर्ध्वाधर बल सीमा से अधिक न हो जाए। जैक (Jack) की सहायता से प्रत्येक खंबे पर वज़न बढ़ाया जाता है। चट्टान के अपरूपण प्लेन (Shear Plain) की वज़न सहन करने की क्षमता का आंकलन भी किया जाता है।

(iii) **भूकम्पीय परीक्षण** (Seismic test) : यह परीक्षण एक प्रकार का अनुमानित परीक्षण (Approximation test) है। इसमें चट्टान के अंदर शॉक तरंगें (Shock waves) प्रवाहित की जाती है। इनसे चट्टानों की गति व समय को नापा जाता है। इससे चट्टान के अंदर के विरूपणता को भी नापा जाता है।

तल की अवस्था में अभियांत्रिकी कार्य के अनुसार बदलाव लाने के लिए निम्न कार्यों किए जाते है –

(i) तल की चट्टानें अगर कमजोर है तो उन्हें मजबूत बनाने के लिए ग्राऊटिंग (Grouting) और भराव (Filling) द्वारा कमजोर क्षेत्रों में भरा जाता है। इसका विस्तृत विवरण कक्षा 11वीं में लेख है।

(ii) मृदा स्थिरीकरण का कार्य भी सीमेन्टिंग, सोडियम सिलीकेट और कोयले की चूरी के उपयोग से किया जाता है। इसका भी विस्तृत विवरण कक्षा 11वीं में लेख है।

तल की अवस्था जानने में दूसरा महत्वपूर्ण पहलू शैलों के प्रकार है जिनकी उपयुक्तता (Suitability) निम्न प्रकार से विवरणित है –

(i) **आग्नेय चट्टान के उपयुक्तता :** वितलीय (Plutonic) और हिपॉबेसल (Hypabyssal) चट्टानें मजबूत तलीय संरचना (Foundation) का निर्माण करती है पर उन पर निर्माण कार्य करना कठिन है। यह दोनों चट्टानें कठोर और अप्रवेश्यता वाली होती है इसलिए इनके ऊपर किसी प्रकार की अस्तर (Lining) की जरूरत नहीं होती। ज्वालामुखी चट्टानें छिद्रयुक्त होती हैं इसलिए इनमें छिद्रों को सीमेन्टिंग द्वारा भरना पड़ता है। इनका घनत्व कम होता है इसलिए इनकी भार सहने की क्षमता कम

होती है परन्तु सुसंबद्धता (Compactness) कम होने की वजह से इनको काम में लेना आसान होता है।

(ii) **अवसादी चट्टानों की उपयुक्तता** : अवसादी चट्टानों को तलीय संरचना के लिए कम योग्य माना जाता है। परन्तु अगर अवसादी चट्टानों में सीमेन्टिंग अच्छी हो और मोटे संस्तर से बनी हो तो उन्हें तलीय संरचना के लिए उपयुक्त माना गया है। ऐसी चट्टानों में पतली परत बिछाने की आवश्यकता भी नहीं होती। ऐसी चट्टानों में अगर आंतरिक संरचना और भू–जल की मात्रा सीमित हो तो यह किसी भी अभियांत्रिकी निर्माण में कारगर सिद्ध होती है। उदाहरण के लिए बालुकाश्म में अगर भू–जल संतृप्ति से ज्यादा हो तो वह निर्माण कार्य में उचित नहीं माना जाता है। इसी प्रकार शेल (Shale) चट्टानों को भी अभियांत्रिकी के कार्यों के लिए कम उपयुक्त माना गया है। विशेष रूप से सुरंग निर्माण में शेल चट्टानों से बने पहाड़ों को अलग रखा जाता है। चूना पत्थर में डोलोमाइट युक्त चट्टानों को अधिक उपयोगी माना गया है, क्योंकि चूनापत्थर आसानी से रसायनिक अभिक्रिया द्वारा परिवर्तित होकर विकृत हो जाती है।

(iii) **कायांत्रित चट्टान की उपयुक्तता** : नीस (Gneiss) चट्टानों की उपयोगिता ग्रेनाइट चट्टानों के समकक्ष मानी जाती है। इन चट्टानों पर भी लाईनिंग की आवश्यकता नहीं होती है। फिलाइट (Phyllite) और माइलोनाईट (Mylonite) चट्टानें आसानी से टूटकर बिखर जाती है इसलिए इन्हें अभियांत्रिक कार्यों के लिए उपयुक्त नहीं माना जाता है। इसके विपरीत संगमरमर को निर्माण सामग्री अधिक काम में लिया जाता है और इसकी तलीय संरचना भी मजबूत बनती है। अधिक तापमान व दाब पर बनने वाली कायांत्रित चट्टानें अच्छी तलीय संरचना का कार्य करती है।

तल की अवस्था के आंकलन के लिए तीसरी सबसे महत्वपूर्ण पहलू तल की चट्टानों की आंतरिक संरचना है। निर्माण कार्य करने से पूर्व संरचनाओं के निम्न पहलुओं को जांचा परखा जाता है।

(i) **नति व नतिलम्ब** : निर्माण कार्य में चट्टानों के नति व नतिलम्ब की जानकारी खुदाई व डिज़ाइनिंग के कार्यों को आसान बना देती है। सामान्यतः खुदाई (Excavation) का कार्य नतिलम्ब के समान्तर या नति के 90° के कोण पर किया जाता है।

(ii) अगर **चट्टानें क्षितिजिय संस्तर के रूप में** मिलती है तो इनमें छोटी या कम दूरी की संरचनाओं जैसे कि छोटी सुरंग बनाने का कार्य आसानी से किया जा सकता है। सुरंग निर्माण की दिशा में क्षितिजिय संस्तर को इस प्रकार से डिज़ाइन किया जाता है कि वे सहायक धरणी (Beam) का कार्य करें या फिर मजबूत छत के रूप में सहायक हो।

(iii) अगर **चट्टानों की संरचना झुकी** हुई हो तो निर्माण कार्य को झुकाव के कोण के आधार पर निर्धारित किया जाता है। अगर झुकाव का कोण 45° से कम है और सुरंग का निर्माण नति के समान्तर है तो ऊपर की चट्टानें प्राकृतिक रूप से मजबूत छत का कार्य करेगी। और यदि सुरंग की दिशा नति से कोण बनाती है तो ऐसी परिस्थिति में फिसलने की संभावना बन जाती है जिससे बोल्टिंग (Bolting) द्वारा स्थिर किया जा सकता है। इसी प्रकार से यदि चट्टानों का झुकाव 45° से अधिक है और सुरंग की दिशा नति से कोण बनाती है तो यह सबसे सुरक्षित श्रेणी की परिस्थिति है। इसके विपरीत नति के समान्तर वाली परिस्थिति में सर्वाधिक कमजोर संस्तर पाये जाएंगे जिन्हें उचित तरीकों द्वारा बांधकर मजबूत बनाना होगा।

(iv) वलनीय (Folded) चट्टानों के क्षेत्र में निर्माण के दौरान वलन की धूरी का झुकाव (Plunge) जानना जरूरी है जिससे कि अभियांत्रिकी निर्माण में भार को उचित तरीके से बांटा जा सके और चट्टानों को बिखरने से बचाया जा सके। अपनत (Anticline) व अभिनत (Syncline) की परिस्थिति का विश्लेषण सही तरीके से ज्ञात कर भूजल की उपलब्धता व मात्रा का अनुमान लगाया जाना आवश्यक है।

(v) भ्रंश सतह (Fault plane) : यदि संरचना स्थल पर भ्रंश सतह पायी जाती है तो उसके समान्तर फिसलने की सम्भावनाएं बढ़ जाती है। ऐसी भ्रंश सतह जो दिशा के लम्बवत् हो उनको बोल्टिंग द्वारा सीमेन्ट से भरा जाता है तथा कमजोर सतह को मजबूती प्रदान की जाती है। भ्रंश क्षेत्र में भू–जल का परागमन आसान होता है इसलिए इस क्षेत्र को अप्रवेश्य बनाने का कार्य भी किया जाता है। भू–जल के स्थिर (Static) व गतिक (Dynamic) दाब को नियंत्रित करने के लिए प्रवाह मार्ग (Channel) का निर्माण किया जाता है।

(ग) **निर्माण सामग्री के भू–वैज्ञानिकी पहलू** : अभियांत्रिकी कार्यों में प्रयोग में ली जाने वाली सामग्री की गुणवत्ता जानने के लिए उनकी भू–वैज्ञानिकी पहलूओं की महत्ता जानना जरूरी है। निम्न पहलूओं के आधार पर निर्माण सामग्री की गुणवत्ता को परखा जाता है।

(i) **दबने की क्षमता** (Compressive or crushing strength) : अभियांत्रिकी कार्यों में काम में लिए जाने वाले पत्थर की दबाव बढ़ने के साथ न बिखरने की क्षमता का आंकलन दबाव के विपरीत प्रतिरोधकता से निकाला जाता है। कोई भी पत्थर प्रति वर्ग क्षेत्र में कितना भार सहन कर सकता है यह उसके खनिज संगठन, नमी की मात्रा और भीतरी संरचना से ज्ञात होता है। दबाव सहन करने की क्षमता के आधार पर पत्थर के आयतन में आने वाली कमी को आंका जाता है।

(ii) **तनन क्षमता** (Tensile or Transverse) : किसी भी निर्माण सामग्री को अभियांत्रिकी कार्यों में प्रयोग में लेने से पहले उसकी टेनसाईल क्षमता का पता लगाया जाता जो उसकी मुड़ने की क्षमता को दर्शाता है। पत्थर के 1" लम्बे बार को जो कि 1" की दूरी पर दो सिरों से टिका हुआ, को मोड़ने के बल (Force) से जाना जाता है जब भार मध्य में केन्द्रित हो।

$$R = \frac{3\,wl}{2\,bd^2}$$

जहाँ पर R = Modulus of rupture (विदर)

w = भार जिस पर पत्थर टूट सकता है।

l = पत्थर की लम्बाई

b = पत्थर की चौड़ाई

d = पत्थर की मोटाई

(iii) **छिद्रता** (Porosity) : निर्माण सामग्री में काम में लिए जाने वाले पत्थर में छिद्रों की संख्या को छिद्रता कहा जाता है। यह पत्थर के अन्दर जल ग्रहण करने की क्षमता को दर्शाता है। छिद्रों के आपस में जुड़े रहने और जल प्रवाह को प्रभावित करने की क्षमता भी छिद्रता से ज्ञात की जाती है। पत्थर के दानों का आकार, आकृति व सीमेन्ट सामग्री भी इसका निर्धारण करते हैं।

(iv) **घनत्व** (Density) : यदि छिद्रों की संख्या अधिक है तो घनत्व कम होगा जिससे पत्थर की वजन सहने की क्षमता कम मानी जाती है। जो चट्टानें अधिक घनत्व की होती हैं व ज्यादा सुसंबद्ध (Compact) और स्थूल (Massive) होती है। इनकी भौतिक क्षमता भी ज्यादा होती है।

(v) **एब्रेसिव प्रतिरोधकता** (Abrasive resistance) : निर्माण सामग्री निर्माण के दौरान कई प्रकार के मेकेनिकल बल का सामना करती है जैसे कि फटना, टूटना आदि जो कि उसकी एब्रेसिव क्षमता को दर्शाता है। पत्थर रगड़ खाकर व फटकर नहीं बिखरता है तो माना जाता है कि उसकी एब्रेसिव प्रतिरोधकता ज्यादा है।

(vi) **ठण्ड प्रतिरोधकता** (Frost resistance) : जब निर्माण सामग्री का बहुत कम व अधिक तापमान की परिस्थितियों में मूल स्वरूप स्थिर बना रहे तो उसकी ठण्ड प्रतिरोधकता को अधिक माना जाता है। अगर पत्थर के अन्दर छिद्र कम होंगे तो व पानी को कम सोखेगा और यह कम पानी बहुत कम तापमान पर कम बर्फ बनाएगा जिसकी वजह से भीतर के आयतन में परिवर्तन कम आएगा और पत्थर पर कम तापमान का असर कम दिखेगा। इसी प्रकार अधिक तापमान की परिस्थिति में पानी भाप बन जाएगा और इस कारण से भाप के दबाव से पत्थर अन्दर के दाब के कारण फट सकता है।

(vii) **आग प्रतिरोधकता** (Fire resistance) : अभियांत्रिकी परियोजनाओं में कुछ विशेष परिस्थितियों जैसे कि सुरंग निर्माण में आग प्रतिरोधकता के गुण का आंकलन निर्माण सामग्री के लिए विशेष रूप से किया जाता है। अगर कोई चट्टान समान रूप से फैलती और सिकुड़ती है तो वह ताप प्रतिरोधक होगी। यह निर्भर करता है कि चट्टान का खनिज संगठन एक समान हो, छिद्रों की संख्या अधिक हो और दानों का आकार एक समान हो। उदाहरण के लिए क्वार्टजाइट, बालूकाश्म और डोलोमाइट। अगर खनिज संगठन, आकृति व प्रकार में एक समानता न हो जैसे कि वितलीय आग्नेय चट्टानें, तो उनकी आग्नेय प्रतिरोधकता कम होती है क्योंकि उनमें गर्म होने पर एक समान सिकुड़न व फैलाव नहीं हो पाता है।

(viii) **स्थायीत्वता** (Durability) : किसी भी निर्माण की आयु इस बात पर निर्भर करती है कि उसमें काम में ली गयी निर्माण सामग्री कितनी स्थायीत्व युक्त है। निर्माण सामग्री यदि भौतिक व रसायनिक कारकों द्वारा जल्दी विघटित होती है तो उसकी स्थायीत्वता कम मानी जाती है। ज्यादातर अखंडज पत्थर जैसे कि चूनापत्थर को कम स्थायीत्व युक्त माना गया है जबकि संगमरमर ज्यादा सुसंबद्ध होने के कारण अधिक स्थायीत्व युक्त माना जाता है।

(ix) **इकट्ठा रहने का गुण** (Binding property) : निर्माण सामग्री को उसके जोड़ने की शक्ति से परखा जाता है। पत्थर के टुकड़े अगर आपस में अच्छी तरह से जुड़ जाते (Interlock) हैं तो उनकी Binding क्षमता को अच्छी माना जाता है। कोणाकार टूकड़े गोलाकार टूकड़ों के मुकाबले में आसानी से आपस में जुड़कर अच्छी मजबूती प्रदान करते है। इसी प्रकार से समुच्चय (Aggregate) की कठोरता, मजबूती और बिखरने की क्षमता (Crushing strength) आपस में अच्छी तरह जुड़ने पर निर्भर करती है।

बांधों के प्रकार का संक्षिप्त विवरण

बांधों के प्रकार का वर्गीकरण भू–वैज्ञानिकी परिस्थितियों के आधार पर किया जाता है। बांधों के दो मुख्य प्रकार हैं :–

(क) अरदन बांध (Earthern Dams)

(ख) मेसनरी बांध (Masonary Dams)

(क) **अरदन बांध** (Earthern Dams) : अरदन बांध को एमबेंकमेंट (Embankment) भी कहा जाता है। इन बांधों को प्रायः चौड़ी घाटियों में बनाया जाता है जिनकी चौड़ाई 150 मीटर से भी अधिक होती है। इनका आकार ट्रेपेजियम जैसा होता है (चित्र 7.5)। इन बांधों के केन्द्र (Core) में अप्रवेश्य चट्टानों की परत बनाई जाती है। यह दो प्रकार के होते हैं :–

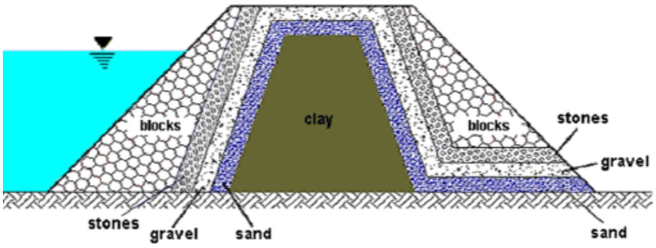

चित्र 7.5 : ट्रेपेजियम आकार का अरदन बांध

(i) **रॉक–फिल्ड बांध** (Rock-filled dams) : इन बांधों की तलीय संरचना में दृढ़िकृत चट्टानें होती हैं जिनकी प्रवेश्यता बहुत कम होती है। उदाहरण – तिहड़ी बांध, भागीरथ नदी पर।

(ii) **अर्थ–फिल्ड बांध** (Earth-filled dams) : इन बांधों की तलीय संरचना में अदृढ़िकृत चट्टानें होती हैं जिस कारण से इनकी अपरूपण शक्ति कम मानी जाती है। इनकी प्रवेश्यता (Permeability) ज्यादा मानी गयी है। उदाहरण – फरक्का बांध, गंगा नदी पर।

(ख) **मेसनरी बांध** (Masonary dam) : यह बांध चार प्रकार के होते हैं :–

(i) **ग्रेवेटी बांध** (Gravity Dams) : यह एक ठोस मेसनरी बांध है जिसके अन्दर कंक्रीट का भराव होता है। इसकी आकृति

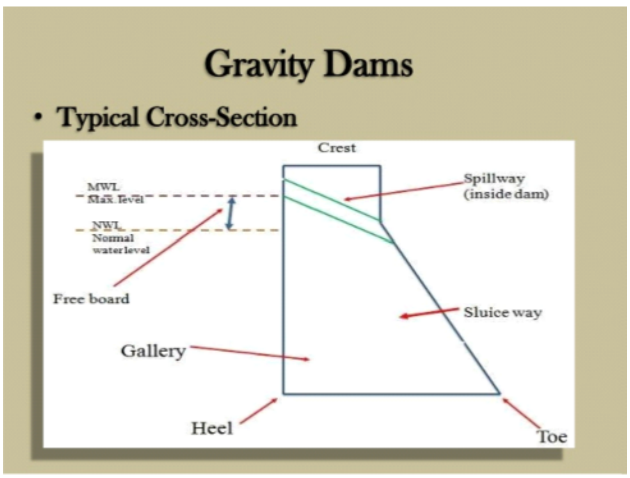

चित्र 7.6 : ग्रेविटी बांध के सेक्शन का चित्रण

त्रिकोणात्मक होती है (चित्र 7.6)। यह संकड़ी नदी घाटी में बनाया जाता है और विकट परिस्थितियों को भी झेल सकता है। इसकी ऊँचाई का निर्धारण इसके तल में पाये जाने वाली चट्टानों के भार व दबाव सहने की क्षमता के आधार पर किया जाता है। उदाहरण भाकड़ा बांध सतलज नदी पर।

(ii) **बटरेस बांध** (Buttress Dam) : इस बांध के निर्माण में कंक्रीट संरचनाओं में डेक (Deck) निर्मित किया जाता है जिसका ढाल धारा के विपरित तरफ (Upstream) होता है। यह

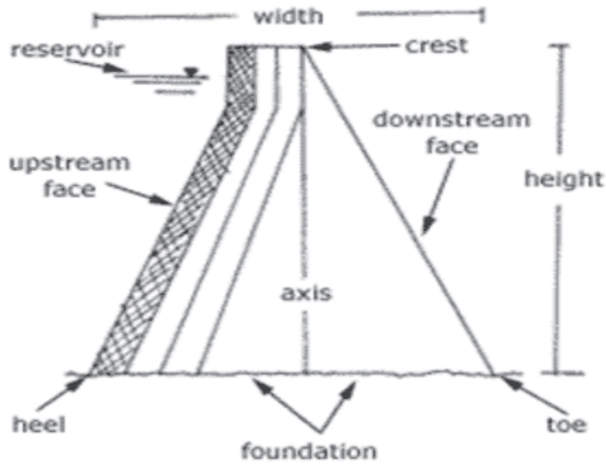

चित्र 7.7 : बटरेस बांध के सेक्शन का चित्रण

डेक सारा भार अपने ऊपर लेता है और इसके पीछे मजबूत दीवार बनाई जाती है जिसे बटरेस कहा जाता है (चित्र 7.7)। इस दीवार को और मजबूती प्रदान करने के लिए क्रॉस–वाल बनाई जाती है जिसे स्टर्ट कहते हैं।

(iii) **आर्च बांध** (Arch Dam) : इस बांध का निर्माण बहुत ही संकड़ी नदी–घाटी पर किया जाता है। नदी घाटी में चट्टानों का ढाल काफी अधिक होता है और तल काफी मजबूत रहता है। इस बांध में एक या एक से अधिक गोलाकार या आर्च आकार दीवार बनाई जाती है और उसकी अवतलीय दिशा ऊपरी तरफ होती है (चित्र 7.8)। अगर आर्च बांध की त्रिज्या पूरी संरचना में

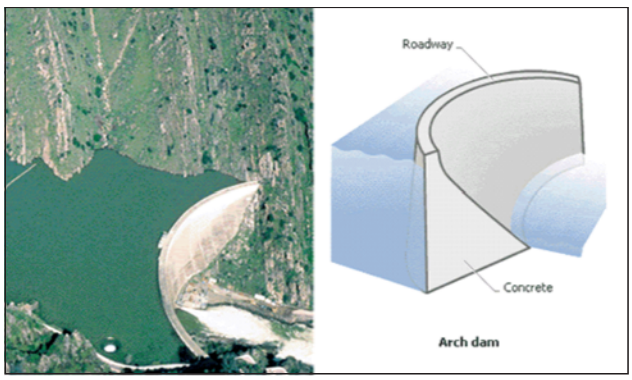

चित्र 7.8 : आर्च बांध की आकृति व सेक्शन

एक समान होता है तो उसे स्थिर (Fixed) त्रिज्या आर्च बांध कहा जाता है और यदि एक समान न हो तो उसे वेरियबल (Variable) त्रिज्या आर्च बांध कहते हैं। उदाहरण – इदुक्की बांध, पेरियर नदी, केरल।

(iv) **हूवर बांध** (Hoover Dam) : हूवर बांध, तीन बांधों ग्रेवेटी बांध, आर्च बांध और बटरेस बांध का मिश्रण है, इसलिए

इस मिश्रित बांध (Composite dam) भी कहते हैं। इसमें कंक्रीट, मेसनरी और मिट्टी के भराव (Earth fill) तीनों का परिस्थिति के अनुसार उपयोग में लिया जाता है। उदाहरण के लिए हीराकुण्ड बांध, महानदी पर।

सुदूर संवेदी (Remote Sensing)

एरियल फोटोग्राफी को सामान्यतः उर्ध्वाधर और ओबलिक (Oblique) दो प्रकारों में वर्गीकृत किया गया है। उर्ध्वाधर एरियल फोटोग्राफ में कैमरों की धूरी की दिशा को उर्ध्वाधर रखने का बेहतरीन प्रयास किया जाता है। इस प्रकार की फोटोग्राफी में एक लेंस की फ्रेम वाले कैमरे का सामान्यतः उपयोग किया जाता है। उर्ध्वाधर एरियल फोटोग्राफी लेना लगभग असंभव सा होता है क्योंकि कोणीय घुमाव प्रायः वायुयान के कोणीय ऊंचाई के साथ स्वाभाविकता के साथ आ ही जाते हैं। एरियल फोटोग्राफी लेते समय 1° से 3° का हल्का–सा झुकाव आ जाता है इसलिए इन्हें झुके हुए (Tilted) एरियल फोटोग्राफी भी कहते हैं। प्रायः सभी एरियल फोटोग्राफी झुके हुए की श्रेणी में ही आते हैं। जब एरियल फोटोग्राफी को झुका कर किया जाता है तो इसे ओबलिक (Oblique) एरियल फोटोग्राफी कहा जाता है। अगर क्षितिज के साथ एरियल फोटोग्राफी का कोण ज्यादा है तो उसे उच्चकोणीय ओबलिक एरियल फोटोग्राफी कहते हैं और यदि कोण कम है तो उसे निम्नकोणीय ओबलिक एरियल फोटोग्राफ कहते हैं।

एरियल फोटोग्राफी, सुदूर संवेदी के सिद्धांत

एरियल फोटोग्राफी और सुदूर संवेदी में मूलभूत सिद्धांत उसके उपयोग पर आधारित होता है। किसी भी एरियल फोटोग्राफी को लेने में सुदूर संवेदी की भिन्न–भिन्न तकनीकों का इस्तेमाल किया जाता है। इन सभी तकनिकों के अन्दर निम्न बातों का ध्यान रखा जाता है :–

(1) **आकृति** (Shape) : एरियल फोटोग्राफी लिए जाने वाले क्षेत्र की आकृति और उसके अन्दर की प्रत्येक वस्तु की ऊंचाई, मोटाई व लम्बाई के कोण का ध्यान रखा जाता है। प्रत्येक आकृति का अपना अलग महत्व होता है।

(2) **आकार** (Size) : किसी भी एरियल फोटोग्राफी का आकार उसकी मापनी के आधार पर किया जाता है। यह भी ध्यान रखा जाता है कि सबसे छोटे व सबसे बड़े आकार की वस्तु में अनुपातिक फर्क हो।

(3) **स्वरूप** (Pattern) : स्वरूप से वस्तुओं की स्थानिक जमावट का अध्ययन किया जाता है। उदाहरण के लिए बाग में उगाये गए पेड़ों का स्वरूप जंगल में उग रहे पेड़ों से भिन्न होता है इसलिए दोनों के एरियल फोटोग्राफी भी भिन्न–भिन्न नजर आएंगे।

(4) **तान** (Tone) : यह पारस्परिक चमक या रंग को दर्शाती है। हल्के तान या गहरे तान के एरियल फोटोग्राफी का गठन रोशनी की उपलब्धता पर भी निर्भर करता है।

(5) **गठन** (Texture) : किसी भी एरियल फोटोग्राफी का गठन तान के बदलाव की बारम्बारता को दर्शाता है। गठन बहुत सारी छोटी–छोटी इकाइयों को एक साथ जोड़कर देखने पर निर्मित होता है। गठन को दाने रहित (Smooth) या दानेदार (Coarse) भी कहा जाता है।

(6) **परछाई** (Shadow) : परछाई का परिणाम परछाई की बाह्य रेखा के खाका (Profile) और परछाई द्वारा परावर्तित किरणों के आधार पर किया जाता है। परछाई के प्रभाव का आंकलन रोशनी की तीव्रता तथा कोण को ध्यान में रखकर किया जाता है।

(7) **साईट** (Site) : साईट से स्थल या स्थान का तात्पर्य होता है। जिस स्थान का एरियल फोटोग्राफ लेना है उसका प्राकृतिक तलरूप या भौगोलिक परिस्थिति कैसी है उसका ध्यान जाता है।

(8) **संबंधता** (Association) : इसके अन्तर्गत एरियल फोटोग्राफ द्वारा खींचे जाने वाली वस्तुओं या स्थानों का आपस में किस प्रकार से जुड़ाव है उसका अध्ययन किया जाता है।

(9) **चाबियां** (Keys) : एरियल फोटोग्राफी के अध्ययन हेतु कई प्रकार की चाबियों को रखा जाता है जो कि अध्ययन को सार्थक बनाती है। उदाहरण के लिए सलेक्शन चाबी (Selection key), छंटनी चाबी (Elimination key), डाइकोटोमस चाबी (Dichotomous key)। यह सभी चाबियां एरियल फोटोग्राफ का कार्य करती है।

(10) **मापनी** (Scale) : एरियल फोटोग्राफ छोटी, मध्यम और बड़ी मापनी की श्रेणियों में फोटोग्राफी के क्षेत्रों और फोटोग्राफ के आकार के आधार पर वर्गीकृत किया गया है।

(11) **स्केनर** (Scanner) : सुदूर संवेदी में उष्मा आधारित (Thermal based), मल्टीस्पेक्ट्रल, माइक्रोवेव आधारित स्केनर का उपयोग अंकीकरण (Digitization) की तकनीक के साथ किया जाता है।

एरियल फोटोग्राफी और सुदूर संवेदी के भू–वैज्ञानिक उपयोग

कक्षा 11वीं में एरियल फोटोग्राफी व सुदूर संवेदी के महत्व को समझने के दृष्टिकोण से संक्षेप में कुछ भू–वैज्ञानिक उपयोग को संदर्भित किया था। एरियल फोटोग्राफी व सुदूर संवेदी की तकनीक का वर्तमान में बहुत ज्यादा उपयोग भू–विज्ञान के

साथ–साथ अन्य क्षेत्रों में किया जाने लगा है। निम्न बिन्दु भू–विज्ञान के क्षेत्र में एरियल फोटोग्राफी व सुदूर संवेदी के बढ़ते उपयोगों को विस्तार से दृष्टिगोचर करते हैं।

(1) **मृदा के गुण** (Soil character) : मृदा के विभिन्न पहलुओं जैसे कि मृदा का प्रकार, रंग, मोटाई, स्रोत, अपरदन तथा वनस्पति के साथ सहसंबंध को ज्ञात करने में एरियल फोटोग्राफी व सुदूर संवेदी की तकनीक का उपयोग भू–वैज्ञानिक की दृष्टि से खनिज व शैल संगठन ज्ञात करने में सहायक होता है। मृदा के साथ तलरूप, जलवायु अध्ययन, रसायनिक अवशेषों व परागमन की गतिविधियों का भी समेकित अध्ययन किया जाता है। मृदा के प्रकार तथा उपलब्धता, जलनिकासी व्यवस्था की पहचान करने में भी सहायक होती है। मृदा के कणों का आकार व आकृति का अध्ययन भी उच्च विभेदी (High Resolution) संवेदन द्वारा किया जाने लगा है।

(2) **भू–उपयोग–उपलब्धता का आंकलन** (Land-use-availability and evaluation) : भूमि के उपयोग की सार्थकता का आंकलन करने का कार्य भी एरियल फोटोग्राफी और सुदूर संवेदी की तकनीक से किया जा सकता है। इसमें किसी भी स्थान की तलरूपीय पहलुओं, भूआकृति पहलुओं, ढाल की गोलाई आदि का पारस्परिक अध्ययन किया जाता है। इस अध्ययन में प्रमाणिक रूप से यह सिद्ध किया जा सकता है कि किस भूमि का उपयोग कौनसे कार्य के लिए सर्वश्रेष्ठ रहेगा। नगर नियोजन, सीवरेज नियोजन व शहर के पानी बहाव की प्रणाली को एरियल फोटोग्राफी के माध्यम से सूक्ष्म रूप से अध्ययन किया जा सकता है। नगरीय निर्माण क्षेत्र, भूजल भराव नियोजन आदि का चिन्हिकरण ढाल की स्थिरता ज्ञात कर किया जा सकता है। प्राकृतिक रूप से किन स्थानों का संरक्षण होना चाहिए उन्हें भी एरियल फोटोग्राफी और सुदूर संवेदी द्वारा चिन्हित किया जा सकता है।

(3) **भू–भाग** (Terrain) **आंकलन** : भू–भाग आंकलन एक बड़ा ही व्यापक शब्द है जिसमें विभिन्न भू–वैज्ञानिक पहलुओं का समेकित व पारस्परिक अध्ययन किया जाता है। तलरूप अपरदन गठन, ढाल, रंगत व भू–उपयोग को समग्र रूप से अध्ययन कर किसी भी स्थान को किसी विशेष कार्य के उपयोग के लिए नियोजित तरीके के द्वारा विकसित किया जा सकता है। एरियल फोटोग्राफी व सुदूर संवेदी में किसी क्षेत्र को विकसित करने के लिए तापमान, वर्षा, जलवायु व अन्य भौगोलिक परिस्थितियों को भी ध्यान में रखकर मापदण्डों का निर्धारण किया जाता है।

(4) **शैल–प्रकार का आंकलन** (Rock type evalution) : एरियल फोटोग्राफी व सुदूर संवेदी की तकनीक से शैल–प्रकार को विभेदित कर अध्ययन किया जा सकता है। अवसादी शैलों जैसे कि बालूकाश्म शैल और चूनापत्थर अलग–अलग प्रकार के गठन व जलनिकासी व्यवस्था द्वारा पहचानी जा सकती है। खण्डज अवसादी शैल, अपरदन परागमन व निक्षेपण से अधिक प्रभावित होती है इसलिए इनके गठन अखण्डज अवसादी शैलों से अलग होता है। चूनापत्थर विशेष रूप से रसायनिक अपक्षय द्वारा अधिक प्रभावित होते हैं इसलिए इनके ऊपर जैव रसायनिक अभिक्रियाओं का ज्यादा प्रभाव दिखाई देता है। संस्तर संधि का भी भिन्न शैलों में अलग–अलग प्रभाव दिखाई देता है। रंग परिवर्तन साधारणतः संस्तर के कारण दिखाई देता है। संस्तर का आकार, आकृति, मोटाई, चौड़ाई व लम्बाई का भी एरियल फोटोग्राफी पर अध्ययन किया जाता है। अवसादी शैलों में संरचना का अध्ययन आसानी से सुदूर संवेदन द्वारा किया जा सकता है। आग्नेय चट्टानों में संधि संरचना, खनिज गठन व कृति (Forms) का अध्ययन एरियल फोटोग्राफी द्वारा किया जा सकता है। उदाहरण के लिए ग्रेनाइट चट्टान गोलाभ अपरदन द्वारा बहुत ही बड़े आकार की भू–आकृति के रूप में दिखाई देती है। ज्वालामुखी चट्टानों को संरचना कोन की आकृति की होती है। अन्तर्वेधी चट्टानें जैसे कि डाईक (Dyke) व सिल (Sill) व्यतिरेक (Contrast) तान के आधार पर आसानी से पहचानी जाती है। फ्लड बेसाल्ट सीढ़ीनुमा (Traps) आकृति का निर्माण करते हैं। ज्वालामुखी क्रेटर (Crator) के आसपास के क्षेत्रों में द्रोणी जैसी आकृति का निर्माण करते हैं जो एरियल फोटोग्राफी पर सुभिन्न तरीके से पहचानी जा सकती है (चित्र 7.9)।

खम्भाकार संधि की पहचान बेसाल्ट में बड़े–बड़े उर्ध्वाधर खम्भों के रूप में की जाती है। कायांत्रित चट्टानों की पहचान एरियल फोटोग्राफ पर कायंत्रण के प्रभावों के आधार पर की जाती है। मूल आकार, रंग, तान व गठन में जल पूर्ण परिवर्तन

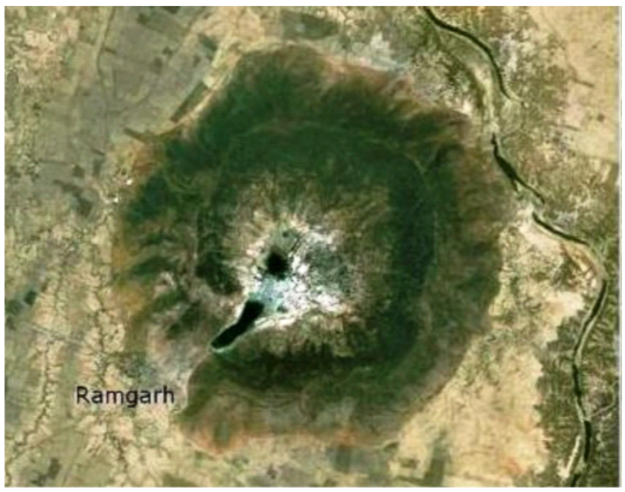

चित्र 7.9 : रामगढ़ क्रेटर (राजस्थान) का एरियल फोटोग्राफ

दिखाई दें, जैसे कि धारीदार स्वरूप आदि हो तो इनकी पहचान की जा सकती है। हालांकि कायांत्रित चट्टान अवसादी व आग्नेय चट्टानों के मुकाबले आसानी से पहचान में नहीं आती है।

(5) **स्थलाकृति** (Landforms) : वायुजनित स्थलाकृति जैसे कि रेत के धोरे/टीले, लोएस (Loess) आकृतियों का निर्माण रेगिस्तान क्षेत्र में देखा जाता है। इसी प्रकार से समुद्रीय किनारों पर रेत की दिवार, गुफाओं, तटों के निर्माण का अध्ययन एरियल फोटोग्राफ व सूदुर संवेदन द्वारा किया जा सकता है। हिमनद जनित भू–गठन जैसे कि टिल्स (Tills), मोरेन (Moraine), एस्कर (Eskers), ड्रमलिन (Drumlins) आदि की पहचान एरियल फोटोग्राफ पर गठन व रंगत के आधार पर की जा सकती है। नदी–घाटी क्षेत्रों की स्थालाकृति जैसे कि जलोढ़–पंख (Alluvial fans) फ्लड सतह (Flood Plain), डेल्टा, यारडांग (Yardangs) की पहचान भी एरियल फोटोग्राफ पर चिन्हित की जा सकती है।

पर्यावरण भू–विज्ञान (Environmental Geology)

खनन एवं पर्यावरण (Mining & Environment)

खनन खनिज को प्रकृति से प्राप्त करने की वैज्ञानिक पद्धति है। खनिज को खनन से प्राप्त करने में प्राकृतिक सम्पदा का दोहन होता है। खनिज दोहन के दौरान पर्यावरण में परिवर्तन आते है जिसे पुनःस्थापित करने का कार्य कठिन होता है। सामान्यतः पर्यावरण के पहलुओं की बारीकी से जानकारी न होने के कारण पर्यावरण में असन्तुलन देखा जा सकता है। इस कारण से खनन द्वारा पर्यावरण क्षति के पहलुओं को महत्व मिलता है।

खनन की प्रक्रिया के आधार पर खनन–जनित पर्यावरणीय क्षति को वैज्ञानिक उपायों से निपटा जा सकता है। खनिज के प्रकार के आधार पर भी खनन के पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रभावों का आंकलन किया जाता है। सामान्यतः खनन की प्रणाली को खनिज की गहराई के आधार पर निर्धारित किया जाता है जिसके बारे में हम कक्षा 11वीं में अध्ययन कर चुके हैं। खनिज अगर तरलीय अवस्था में हो जैसे कि पेट्रोल तो अधिक गहराई के बावजूद भी कारगर खनन प्रणाली के उपयोग से लिकेज को रोका जा सकता है और पर्यावरण की क्षति को कम किया जा सकता है। समुद्रीय क्षेत्रों में तेल कुओं से पेट्रोल की प्राप्ति के दौरान तेल के रिसाव से व्यापक स्तर पर जीवों की मृत्यु होने की दुर्घटनाएं हो जाती है परन्तु उन्नत तकनीक के विकसित होने से इस प्रकार के पर्यावरणीय क्षति में अब कमी आयी है।

खनन से पर्यावरणीय संतुलन को पुनःस्थापित करने के लिए पूर्वानुमान लगाकर कार्य किया जाना चाहिए। अयस्क सामान्यतः कम प्रतिशत में शैलों में मिलता है इसलिए अनुपयुक्त चट्टानों/पत्थरों व अवशेषों का निस्तारण करने की योजना का वैज्ञानिकी आधार पर विकास किया जाना चाहिए। खदानों से निकलने वाले अपशिष्ट तथा दोहन के दौरान पैदा होने वाले नवीन पदार्थों के निस्तारण को टेलिंग बांध में सुरक्षित ढंग से रखा जाता है जो कि पर्यावरणीय क्षति को व्यापक स्तर पर फैलने नहीं देते। खनन अपशिष्ट को नियंत्रण में करने के लिए और उसके पुनःउपयोग के लिए भी भिन्न प्रकार की रसायनिक पद्धतियों को उपयोग में लिया जाता है। पर्यावरण को पुनःस्थापित करने के लिए खनन क्षेत्र व उसके आसपास के क्षेत्रों में सघन वृक्षारोपण भी किया जाता है। खनन क्षेत्र में भू–जल की समस्या को भी भू–वैज्ञानिकी तरीकों द्वारा नियंत्रित करने के प्रयास किये जाते है।

खनिज आधारित उद्योग एवं पर्यावरण

(Mineral Based Industries and Environment)

खनिज कई उद्योगों के लिए अनिवार्य है और इनके बिना उन उद्योगों का अस्तित्व संभव नहीं है। कई उद्योगों में पत्थरों का भी उपयोग भी व्यापक रूप से होता है, इसलिए उन्हें भी खनिज की श्रेणी में इसी अध्याय में रखा गया है। ऐसे समस्त उद्योग जिसमें कच्चे माल (Raw material) के रूप में खनिज या पत्थरों का उपयोग किया जाता है, उन्हें खनिज आधारित उद्योग कहा गया है एवं उसके पर्यावरणीय प्रभावों का भू–वैज्ञानिकी अध्ययन इस पाठ में किया जा रहा है।

(1) **इमारती पत्थर उद्योग** : इमारती पत्थरों का चयन उनकी स्थायित्व, सामर्थ्य, कठोरता एवं खनन उपयुक्तता के आधार पर किया जाता है। इमारती पत्थरों का उपयोग व्यापक रूप से और अंधाधुंध किया जा रहा है जिसकी वजह से पर्यावरण को सर्वाधिक हानि हो रही है। कई स्थानों पर अवैध खनन का कार्य भी किया जा रहा है जिससे पर्यावरणीय क्षति अनुमान से भी कई गुना अधिक हो रही है। ग्रेनाइट, संगमरमर, बलुआ पत्थर, चूना पत्थर आदि के खनन से न केवल खनन क्षेत्र बल्कि इनके आसपस कई एकड़ क्षेत्रों में पर्यावरण संतुलन गड़बड़ा रहा है।

(2) **सीमेन्ट उद्योग :** सीमेन्ट निर्माण में चूना पत्थर के क्षेत्रों में होने वाले खनन से रसायनिक अभिक्रियाओं के कारण पर्यावरण पर विपरित प्रभाव पड़ता है। रसायनिक अपशिष्टों का असर व्यापक रूप से दिखाई देता है। अपशिष्ट भूजल में घुलकर गुणवत्ता को भी प्रभावित करते हैं। सीमेन्ट उद्योग के पैकेजिंग व खनन इकाइयों में वायु प्रदूषण का प्रभाव सर्वाधिक है। खनन में अनुपयुक्त प्रस्तरों को अनियंत्रित रूप से नवीन अस्थाई पहाड़ों का आकार मिल जाता है जो कि पूर्णतः अस्थिर होते हैं।

(3) **चीनी–मिट्टी उद्योग** में मुख्यतः मृतिका, फेल्सपार, क्वार्ट्ज व बाक्साइट का उपयोग किया जाता है जिनसे विभिन्न प्रकार के उत्पादों का निर्माण किया जाता है। इन औद्योगिक क्षेत्रों में रसायनिक पदार्थों का उपयोग भी किया जाता है जिनके

दुष्प्रभाव वहां काम करने वाले श्रमिकों पर भी पड़ते हैं। उच्च ताप व दाब पर भट्टियों का उपयोग किया जाता है जो कि लम्बे समय कार्य करने पर वातावरण का तापमान व छोटे कणों की मात्रा को वायुमण्डल में उत्सर्जित करते है।

(4) **उर्वरक उद्योग :** उर्वरक उद्योगों में कई खनिज रीढ की हड्डी का कार्य करते हैं। उदाहरण के लिए पोटाश, फास्फेट, नाइट्रेट, सल्फेट आदि। ग्रीनसेण्ड, मेग्नेटाइट, डोलोमाइट, जिप्सम आदि खनिजों की सहायता से उर्वरक निर्मित होते हैं। यह खनिज इन उद्योगों में रसायनिक अभिक्रिया द्वारा कई प्रकार के उर्वरकों के उत्पादन में सहायक होते हैं। इन खनिजों को खनन के पश्चात् बेनिफिसिएशन (Beneficiation) इकाई में रसायनिक अभिक्रिया द्वारा शैलों से अलग किया जाता है जिससे अपशिष्ट पैदा होता है। इसे अगर नियंत्रित तरीके से संरक्षित नहीं किया जा सके या उपयोग में नहीं लिया जा सके तो गंभीर पर्यावरणीय क्षति हो सकती है।

(5) **इस्पात एवं अन्य उद्योग :** इन उद्योगों में लोह खनिज के अतिरिक्त भी कई प्रकार के खनिज जैसे कि चूना, कोयला आदि का उपयोग होता है। इसलिए इन उद्योगों के विकास में पर्यावरणीय प्रभावों का असर व्यापक स्तर पर होता है। चूना, कोयला तथा लोह खनिज खनन क्षेत्रों से प्राप्त खनिजों को उच्च ताप व दाब पर इस्पात बनाने में कार्य में लेते हैं जिसकी वजह से पर्यावरण संरक्षण को बनाए रखना एक चुनौती है। बड़े–बड़े इस्पात उद्योग हमारे देश में कई स्थानों पर फैल हुए हैं जो कि बड़ी मात्रा में कई प्रकार के कच्चे माल का उपयोग करते है। इनके अलावा एल्यूमिनियम, तांबा, जिंक व अन्य खनिज उत्पादन की इकाइयां भी देशभर में कार्यरत है जो कि सीधे खनिज के लिए खनन क्षेत्र से जुड़ी हुई है और इनका व्यापक उपयोग पर्यावरणीय संतुलन में परेशानी पैदा कर रहा है।

(6) **सोपस्टोन व ऐस्बेसटोस से जुड़े उद्योग :** इन उद्योगों में कार्यरत श्रमिकों में कई प्रकार की फेफड़ों से जुड़ी बिमारियां जैसे कि ऐस्बेसटोसिस, सिलीकोसिस आदि देखी जा सकती है। यहां के खनन क्षेत्रों की वनस्पति भी बारीक पाउडर के दुष्प्रभाव से ग्रसित होती है। इन उद्योगों में रसायनों के उपयोग के कारण भी कार्मिकों को बिमारियां चपेट में ले लेती हैं।

(7) **कोयला क्षेत्र के उद्योग :** कोयला उष्मा पैदा करने के सर्वाधिक काम में आता है। भारत में कई प्रकार के कोयले व्यापक रूप से पाये जाते हैं। इनके खनन क्षेत्रों में कई बार दुर्घटनाएं और आग लगने के कारणों से पर्यावरणीय क्षति पहुंचती है। कोयला क्षेत्र भी अवैध खनन की मार से ग्रसित है।

प्राकृतिक आपदाएं एवं पर्यावरण
(Natural Disaster and Environment)

प्राकृतिक आपदाओं से पर्यावरण पर प्रभाव पड़ता है। साधारणतः यह प्रभाव नकारात्मक या हानिकारक की श्रेणी में आते है। विभिन्न प्राकृतिक आपदाओं से होने वाली पर्यावरणीय क्षति के प्रभावों को निम्न बिन्दुओं में विवरणित किया गया है।

(1) **बाढ़ :** बाढ़ जल चक्र का एक भाग है जिसमें किसी भी स्थान पर कम समय में अतिवृष्टि के कारण भू–जल की मात्रा में अचानक अभिवृद्धि देखी जाती है। बाढ़ के कारण पर्यावरणीय क्षति होती है या यह भी कहा जा सकता है कि पर्यावरणीय क्षति के सीमा से अधिक होने पर बाढ़ का कहर बढ़ जाता है। बाढ़ के कारण भू–जल की मात्रा में अत्यधिक इजाफा होता है जिसके कारण प्राकृतिक पारिस्थितिकी तंत्र को हानि पहुंचती है। भारी मात्रा में पानी की अचानक आवक होने व पानी के बहाव की गति अधिक होने की वजह से पानी के मार्ग में आने वाले समस्त चीजें जैसे कि मिट्टी, पत्थर, वनस्पति, जानवर, मानव जीवन व संरचनाएं ध्वस्त होकर बिखर जाती है तथा बह जाती है। बाढ़ का पानी अधिक समय तक किसी भी स्थान पर बने रहने से उस स्थान की पारिस्थिति तंत्र को नुकसान पहुंचता है और पर्यावरण संतुलन को खतरा पैदा हो जाता है। इस संतुलन को पुनःस्थापित करने के लिए समय, धन व मेहनत लगती है। बाढ़ का सर्वाधिक प्रभाव नदी घाटी क्षेत्र व समुद्रीय तटों पर देखा जाता है जहां पर पानी के बहाव के कारण कटाव, भूस्खलन और जमीन में बड़े गड्ढे बनने का खतरा पैदा हो जाता है।

(2) **भूस्खलन** (Landslides) : भूस्खलन भी एक प्रकार की प्राकृतिक आपदा है जिससे पर्यावरण को क्षति पहुंचती है। भूस्खलन में किसी बड़े स्थान की ज़मीन या मिट्टी खिसक जाती है या विस्थापित हो जाती है। यह कई कारणों से होता है। ऐसी घटनाएं मानवीय कारकों के कारण भी होती है। भूस्खलन की घटनाएं समुद्र के अन्दर भी देखी जा सकती है जिसे समुद्रीय भूस्खलन कहा जाता है। ऐसा प्रायः देखा गया है कि जमीन की ऊपरी सतह पर तापमान में बदलाव या वर्षा के कारण से भू–भाग फट (Rupture) जाता है और सतह की मृदा बिखर कर गुरुत्वाकर्षण के कारण ऊंचाई से निचाई की तरफ अग्रेषित होती है। इस प्रकार के परागमन बहुत अधिक गति या धीरे–धीरे मृदा को एक जगह से दूसरी जगह की ओर ले जाते हैं। जिस सतह पर फिसलन के कारण फटने से भूमि का कटाव शुरू होता है उसे ''फिसलन सतह'' (Slip surface) कहते हैं।

भूस्खलन की प्रक्रिया सामान्यतः तीव्र ढाल वाले पहाड़ी क्षेत्रों में देखी जाती है। भूस्खलन में स्थान परिवर्तन या विस्थापन (Displacement) को प्रमुख पहलू माना गया है। भूस्खलन से

होने वाले परागमन उर्ध्वाधर, कोणीय और घुमावदार प्रकार के होते हैं। इसमें मिट्टी का ढेर एक साथ एक निश्चित दिशा में परागमन करता है। अगर यह परागमन चपटी सतह के समान्तर है तो इसे स्थानान्तरीय फिसलन (Translational slide) कहते हैं। अगर परागमन गोलाकार सतह में समान्तर है तो उसे घुमावदार फिसलन (Rotational slide) कहते हैं। स्लम्प (Slump) या क्रीप (Creep) भी एक प्रकार का भूस्खलन है। इसमें मिट्टी के ढेर (Debris) का परागमन ढाल पर कम्बल–नुमा (Blanket shape) आकृति में देखा जा सकता है। बहाव में भूस्खलन पानी के बहने के साथ दिशाहीन होता है। इस प्रकार से भूस्खलन में असमानता युक्त भू–आकृति का जन्म होता है। भूस्खलन में सर्वाधिक महत्वपूर्ण ढाल स्थिरता होती है जिसमें बदलाव के कारण ही भूस्खलन होता है। ढाल स्थिरता में गिरावट का मुख्य कारण छिद्र दाब (Pore pressure) में बढ़ोतरी होना होता है। अत्यधिक वर्षा से छिद्र दाब बढ़ जाता है।

(3) **धंसना** (Subsidence) : यह एक ऐसी प्राकृतिक आपदा है जिसमें भूमि का स्तर अचानक गिर जाता है और बड़े गड्ढे बन जाते है। इसका प्रमुख कारण धंसने वाले स्थान के नीचे से भूमि का अचानक विलुप्त हो जाना होता है। प्रायः ऐसी घटनाएं ऊंचे प्रतिरेखा (High Contours) वाले क्षेत्रों में घटित होती है। धंसने के समय पानी के बहाव के कारण या खनन की प्रक्रिया के दौरान सतह के ठीक नीचे वाले पदार्थ (Material) अचानक हट जाता है। ऐसा कोयला खनन क्षेत्रों में देखा जाता है। तेल खनन के क्षेत्र के क्षेत्रों में भी भूमि का धंसना देखा जाता है। धंसने के कारण पर्यावरण संतुलन अचानक बिगड़ जाता है। तरलीय पदार्थ के हटने के कारण छिद्र दाब में बदलाव होता है जिससे चट्टानों की परतों के मध्य संसजन बल (Cohesive force) में परिवर्तन आता है। इस कारण से कुछ परतें फिसलकर अलग हो जाती है जिसकी वजह से नीचे का हिस्सा खोखला हो जाता है और ऊपरी सतह धंस जाती है।

(4) **भूकम्प** (Earthquake) : भूकम्प कम समय के लिए परन्तु जोरदार झटके के साथ पृथ्वी की सतह व आंतरिक संरचना को तहस–नहस कर देते हैं जिससे पर्यावरणीय क्षति होती है। भूकम्प का प्रभाव क्षेत्र भी व्यापक होता है जिससे पर्यावरण का नुकसान भी विस्तृत देखा जा सकता है। भूकम्प के केन्द्र स्थल (Epicenter) पर सर्वाधिक नुकसान पहुंचता है। भूकम्प पृथ्वी के ऊपर कमजोर सतहों पर अपना सर्वाधिक प्रभाव दिखाते है। भूकम्प के दौरान पृथ्वी के भीतर अचानक ही एक साथ बड़ी मात्रा में ऊर्जा उत्सर्जित होती है। भूकम्प की तीव्रता को रिक्टर मापनी पर नापा जाता है। पृथ्वी के ऊपर कई मानव निर्मित संरचनाएं होती हैं जो कि भूकम्प के कारण तबाह हो सकती है और इसी कारण से पर्यावरण में स्थानीय स्तर पर व्यापक प्रभाव देखे जा सकते हैं।

भूकम्प भ्रंश क्षेत्र में अधिक पाये जाते हैं जो कि कमजोर क्षेत्रों की श्रेणी में आते हैं। भूकम्प के कारण मिट्टी का ढेर, ऐवेलांच (Avalanche) और स्लम्प का भारी मात्रा में बहाव देखा जाता है। समुद्र की सतह से अन्दर सुनामी लहरें बन जाती हैं जो कि समुद्री तटों पर टकराकर पर्यावरण को तबाह कर देती है। भूकम्प के कारण कई स्थिर क्षेत्रों में भी दरारें आ जाती हैं, जिससे भूजल स्तर में तुरंत बदलाव देखा जा सकता है। भूकम्प के विनाशकारी प्रभावों में मानव, जानवर व वनस्पति की तबाही और हानि व्यापक स्तर पर देखी जाती है।

(5) **ज्वालामुखी का फटना** : ज्वालामुखी से निकलने वाले लावा व राख के कारण आसपास क्षेत्रों में व्यापक रूप से पर्यावरणीय क्षति दिखाई देती है। ज्वालामुखी के फटने पर आसपास के क्षेत्रों तथा वायुमण्डल का तापमान अचानक बढ़ जाता है और पर्यावरण असंतुलित हो जाता है। वायुमण्डल में बारीक राख के कणों (Particulate matter) की मात्रा बढ़ जाती है जिसके कारण तापमान में बदलाव आ जाता है। ज्वालामुखी फटने के दौरान लावा का फैलाव भी व्यापक होता है जिससे सतही वनस्पति व जीव–जन्तु पूर्णतः नष्ट हो जाते हैं। मेगमा के तरल पदार्थों का तापमान 600°C से लेकर 1250°C तक होता है जिस कारण से कोई भी वस्तु अपने मूलरूप में स्थिर नहीं रह पाती। ज्वालामुखी के फटने के दौरान बड़े आकार के पत्थरों के टुकड़े हवा में उछलकर दूर–दूर तक फैल जाते हैं और पर्यावरण को अनेक प्रकार से नुकसान पहुंचाते हैं। समुद्र के अन्दर निचली सतह पर जब ज्वालामुखी फूटता है तो उसे समुद्रीय ज्वालामुखी कहते हैं जिससे समुद्र के अन्दर के पर्यावरण को भारी क्षति पहुंचती है। समुद्र के तल का तापमान बढ़ जाता है जिससे गर्म पानी की लहरें निर्मित होती हैं और समुद्रीय पर्यावरण पर कुप्रभाव पड़ता है। समुद्रीय जल की रसायनिक अभिक्रिया बढ़ते ही प्राकृतिक संतुलन गड़बड़ा जाता है।

(6) **रेगिस्तानी तूफान** : मरूस्थलीय क्षेत्रों में रेत के तूफान प्राकृतिक संतुलन पर प्रभाव डालते हैं। इनसे न केवल रेगिस्तानी क्षेत्रों का विस्तार होता है बल्कि इन क्षेत्रों में रहने वाले मानव जीवन व जानवरों पर भी बुरा प्रभाव पड़ता है।

आपदा प्रबंधन (Disaster Management)

आपदा प्रबंधन में सर्वप्रथम आपदा की गहनता का आंकलन किया जाता है। आपदा के कारकों के अनुसार प्रबंधन की सूची बनाई जाती है। आपदा का प्रभाव मानव जाति और उसके सहचरों पर किस–किस प्रकार से और कितनी मात्रा में होगा उसका अनुमानित अध्ययन किया जाता है। आपदा के कारक मानवजनित तथा प्राकृतिक दोनों ही हो सकते हैं। आपदा सर्वप्रथम प्राकृतिक स्थिरता को प्रभावित करती है जिससे आपदा का प्रकोप अल्पकालिक या दीर्घकालिक होगा इसका अनुमान लगाया जा सकता है।

आपदा प्रबंधन में सर्वप्रथम प्राकृतिक पहलुओं को ध्यान में रखकर योजना बनाई जाती है। उदाहरण के लिए बाढ़ के प्रभाव को कम करने के लिए पहाड़ी क्षेत्रों में ढाल स्थिरता को नियंत्रण में रखने का कार्य किया जाता है। एनिकट और प्रतिकूल प्रतिरेखीय पद्धति द्वारा बहाव की गति को नियंत्रित किया जा सकता है।

ज्वालामुखी तथा भूकम्पीय क्षेत्रों में पूर्वानुमान की सहायता से उचित बचाव के उपाय किये जा सकते हैं। आम जनता को सचेत करने के साथ–साथ बचाव के उपायों को मॉक–ड्रील (Mock-Drill) द्वारा प्रशिक्षण भी दिया जा सकता है। नवीन तकनीकों द्वारा भूकम्पीय गतिविधियों पर नज़र रखी जा सकती है। धरातलीय सतहों का अध्ययन कर लावा के प्रवाह की भविष्यवाणी भी की जा सकती है।

नदियों के बहाव क्षेत्र व समुद्री तटों पर डेल्टा क्षेत्र में पानी की अचानक अधिक आवक के बारे में पूर्व में चेतावनी जारी की जा सकती है। समुद्री तूफान के बारे में मछुआरों को उपग्रह चित्रों के माध्यम से पूर्व में जानकारी उपलब्ध करायी जाती है।

मूसलाधार वर्षा से बचाव के लिए पानी के बहाव की गति व प्रभावित क्षेत्रों में जलनिकासी प्रबंधन (Drainage Management) पर ध्यान देकर आपदा से होने वाले नुकसान को कम किया जा सकता है। संभावित कटाव व भूस्खलन के क्षेत्रों की पूर्व में पहचान की जा सकती है और आम नागरिक को इस क्षेत्र में परिगमन से रोका जा सकता है। ऐसे स्थानों के भू–वैज्ञानिकी नक्शे के अनुसार ढाल स्थिरता को बनाए रखने के लिए उचित उपाय किये जा सकते हैं।

महत्वपूर्ण बिन्दु

1. जलभृत तीन प्रकार के होते है – दाबीकृत (Confined), अर्द्धदाबीकृत (Semiconfined) व अदाबीकृत (Unconfined)।
2. उपलब्ध भू–जल (Available water) की अधिकतम सीमा को ''क्षेत्र–क्षमता'' (Field capacity) और न्यूनतम सीमा को ''शुष्कता बिन्दु'' (Wilting point) कहते है।
3. भू–जल अन्वेषण की सतही तकनीकों में भू–भौतिकी परीक्षण, भू–वैज्ञानिकी परीक्षण व एरियल फोटोग्राफी का उपयोग किया जाता है।
4. भू–जल अन्वेषण की उपसतही तकनीकों में छिद्रण परीक्षण, प्रतिरोधकता परीक्षण, विभव परीक्षण, तापमान परीक्षण आदि का उपयोग किया जाता है।
5. भू–जल प्रदूषण के मुख्य कारक रोगजनक सूक्ष्मजीवी, कार्बनिक व अकार्बनिक पदार्थ, रेडियोधर्मी पदार्थ आदि है।
6. भू–जल प्रदूषण नियंत्रण हेतु पुनःशुद्धिकरण की नवीन तकनीक, अपशिष्ट का उचित उपचार, निकासी आदि को प्राथमिकता के साथ काम में लिया जाना चाहिए।
7. राजस्थान राज्य को भू–जल के वितरण की दृष्टि से चार क्षेत्रों (Zones) में बांटा गया है।
8. राजस्थान में भू–जल प्रबंधन में राज्य सरकार की ''मुख्यमंत्री जल स्वावलम्बन योजना'' के सराहनीय परिणाम अपेक्षित है।
9. भू–अभियांत्रिकी परियोजनाओं में निर्माण हेतु भौगोलिक परिस्थितियां, मृदा स्थिरीकरण, भौतिक भू–वैज्ञानिकी पहलुओं, तल की अवस्था आदि कारकों का अध्ययन किया जाना आवश्यक है।
10. आग्नेय चट्टान को अवसादी व कायांत्रित चट्टानों के मुकाबले भू–अभियांत्रिकी कार्यों के लिए श्रेष्ठ माना गया है।
11. भू–अभियांत्रिकी कार्यों में काम ली जाने वाली निर्माण सामग्री आग–प्रतिरोधकता युक्त, अधिक घनत्व, अधिक संपीड़न और अच्छी तनन क्षमता वाली होनी चाहिए।
12. बांधों के प्रकार को अरदन (Earthen) बांध व मेसेनरी (Masonary) बांध में विभाजित किया गया है।
13. एरियल फोटोग्राफ व सुदूर संवेदन के अध्ययन में आकृति, आकार, स्वरूप, तान, गठन, परछाई, सम्बद्धता, चाबी व अन्य कारकों के विभिन्न पहलुओं का ध्यान रखा जाता है।
14. खनिज आधारित उद्योगों से होने वाले पर्यावरणीय प्रभावों का निवारण भू–वैज्ञानिकी तकनीकों द्वारा किया जाता है।
15. आपदा प्रबंधन में आपदा का प्रकार व कारक दोनों का आकलन भू–वैज्ञानिकी तथ्यों के अध्ययन के आधार पर किया जा सकता है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. आरटिशियन कुआं कौनसे प्रकार के जलभृत में पाया जाता है –

(अ) अदाबीकृत जलभृत (ब) दाबीकृत जलभृत
(स) आदर्श जलभृत (द) अर्द्धदाबीकृत जलभृत

2. भूकम्पीय तरंगों की गति चट्टानों में छिद्रों की मात्रा बढ़ने के साथ –

(अ) कम हो जाती है। (ब) बढ़ जाती है।
(स) समान रहती है। (द) बढ़कर कम हो जाती है।

3. भू–जल की उपसतही परिस्थिति में तापमान बढ़ने से भूजल की श्यनता –

(अ) समान रहती है। (ब) बढ़ती–घटती रहती है।
(स) कम हो जाती है। (द) बढ़ जाती है।

4. राजस्थान में भू–जल प्रबंधन के सुधार की दृष्टि से कुल कितने ब्लॉकों का चयन किया गया है –
   (अ) 10 (ब) 11
   (स) 13 (द) 12
5. भू–अभियांत्रिकी निर्माण कार्यों के लिए किस चट्टान को सर्वश्रेष्ठ माना गया है –
   (अ) वितलीय आग्नेय चट्टान
   (ब) अवसादी चट्टान
   (स) ज्वालामुखी आग्नेय चट्टान
   (द) कायांत्रित चट्टान
6. चट्टानों की ठण्ड के प्रति प्रतिरोधकता छिद्रों की संख्या कम होने पर –
   (अ) बढ़ जाएगी
   (ब) कम हो जाएगी
   (स) कम होकर बढ़ जाएगी
   (द) न कम होगी न बढ़ेगी
7. हूवर (Hoover) बांध निम्न में से कौनसे प्रकार की श्रेणी में आता है –
   (अ) ग्रेवेटी बांध (ब) आर्च बांध
   (स) बटरेस बांध (द) उपर्युक्त सभी श्रेणियों में
8. एरियल फोटोग्राफ की छंटाई में कौनसी चाबी काम नहीं आती –
   (अ) मोनोकोटोमस चाबी (ब) डाईकोटोमस चाबी
   (स) सलेक्शन चाबी (द) ऐलिमिनेशन चाबी
9. गोलाभ (Spheroid) अपरदन की आकृति किस चट्टान के साथ जुड़ी हुई है –
   (अ) संगमरमर (ब) चूना पत्थर
   (स) ग्रेनाइट (द) बालूकाश्म
10. सिलीकोसिस की बीमारी किस प्रकार के पर्यावरण क्षय का नतीजा है –
   (अ) खनन क्षेत्र में जनित (ब) बाढ़ से जनित
   (स) भूस्खलन से जनित (द) भूकम्प से जनित

अतिलघुत्तरात्मक प्रश्न

1. दाबीकृत जलभृत को परिभाषित करें।
2. शिथिलन बिन्दु (Wilting point) को समझाइए।
3. छिद्रण परीक्षण क्या होता है?
4. केलिपर लॉगिंग को परिभाषित करें।
5. राजस्थान में भू–जल क्षमता युक्त क्षेत्रफल कितना है?
6. अर्द्धशुष्क भू–जल क्षेत्र वाले जिलों के नाम बताइए।
7. झुंझुनू जिले के उन ब्लॉक का नाम बताइए जिनका भू–जल विभाग द्वारा भू–जल प्रबंधन हेतु चयन किया गया है।
8. मृदा स्थिरीकरण क्या होता है?
9. चट्टान की एब्रोसिव क्षमता को परिभाषित करें।
10. बटरेस बांध को परिभाषित करें।
11. ओबलिक एरियल फोटोग्राफ के प्रकार बताएं।
12. हल्के और गहरे तान युक्त एरियल फोटोग्राफ में अन्तर स्पष्ट करें।
13. उच्च विभेदन संवेदन का उपयोग कहां होता है?
14. सीमेन्ट उद्योग में भू–जल किस प्रकार से प्रदूषित होता है?
15. ज्वालामुखी फटने से वायु की गुणवत्ता में क्या प्रभाव आता है?

लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. ऐरेशन क्षेत्र और संतृप्ति क्षेत्र के भागों को समझाइए।
2. तापमान लॉगिंग को संक्षेप में समझाइए।
3. कौन–कौन से रेडियोधर्मी पदार्थ भू–जल के स्रोत है?
4. उत्सर्जन के स्थान पर प्रदूषण कारक कैसे कार्य करते है?
5. राजस्थान में भूजल वितरण को संक्षेप में समझाइए।
6. भू–जल उपयोग के प्रकार समझाइए।
7. तल की अवस्था किन परीक्षणों द्वारा की जाती है?
8. भू–अभियांत्रिक निर्माण के पूर्व निर्माण सामग्री के किन–किन पहलुओं की जांच की जानी चाहिए?
9. एरियल फोटोग्राफी व सुदूर संवेदन के सिद्धांत को संक्षेप में समझाइए।
10. सुदूर संवेदन में चट्टानों के गुणों का आकलन कैसे किया जाता है?

निबंधात्मक प्रश्न

1. बांध के प्रकारों को सचित्र समझाइए।
2. खनन आधारित उद्योगों से पर्यावरण क्षति को समझाइए।
3. भू–जल के उर्ध्व वितरण को सचित्र समझाइए।
4. राजस्थान में भू–जल वितरण के क्षेत्रों (Zones) को विस्तार से समझाइए।

उत्तरमाला : 1 (ब) 2 (अ) 3 (स) 4 (द) (5) अ 6 (ब) 7 (द) 8 (अ) 9 (स) 10 (अ)